हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ११० वाँ रत्न

कुलीनता

(चार अंकोंमें एक ऐतिहासिक नाटक)

" सूतो वा सूतपुत्रो वा, यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म, मदायत्तं तु पौरुषम् ॥ "

—कर्ण (वेणीसंहार)

लेखक
गोविन्ददास

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ४

द्वितीय संशोधित और-परिवर्धित संस्करण
मई, १९४८

मूल्य एक रुपया बारह आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी, गिरगाँव, मुंबई नं. ४

निवेदन

'कुलीनता' नाटक सन् १९३२ में मेरी दूसरी जेल-यात्राके वक्त नागपुर जेलमें लिखा गया था। उसके बाद इसमें कई परिवर्तन हुए। सन् १९३५ में बम्बईकी 'आदर्श चित्र' फिल्म कंपनीने इस नाटककी कथापर 'धुआँधार' नामक फिल्म भी बनाया, लेकिन कथामें परिवर्तन होते होते फिल्ममें जिस कथाका प्रदर्शन हुआ वह इस नाटकसे एक अलग-सी ही चीज़ हो गई। इस समय यह नाटक जिस रूपमें हिन्दी संसारके सम्मुख जा रहा है वह न सन् १९३२ का इसका रूप है और न 'धुआँधार' फिल्मकी कथाका। अनेक परिवर्तनोंके बाद इसे यह रूप मिला है।

'कुलीनता' त्रिपुरी राज्यकी एक विशेष ऐतिहासिक घटनापर लिखा गया है। यह घटना उस कालकी है जब त्रिपुरीपर प्रसिद्ध कलचुरि वंशके अन्तिम राजा विजयसिंह देवका राज्य था और जब कलचुरि वंशका अन्त और राज-गोंड़-वंशका आरंभ हुआ।

मध्यकालके भारतीय इतिहासमें त्रिपुरी और उसके शासक कलचुरि क्षत्रियोंका बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। कलचुरि क्षत्रिय अपनेको हैहय वंशकी एक शाखा मानते हैं। हैहयवंशके प्रसिद्ध राजा सहस्रार्जुनका नाम रामायण, महाभारत और अनेक पुराणोंमें आया है। हैहयवंशकी कलचुरि शाखाका आरंभ कब हुआ, इसका ठीक पता नहीं लगता। प्रोफेसर कीलहार्नने त्रिपुरीके महाराजाओंके पन्द्रह नाम लिखे हैं। कलचुरि वंशके नरेशोंमें पहला नाम कोकल्लदेव (प्रथम) का मिलता है और अन्तिम नाम विजयसिंह देवका। प्रोफेसर कीलहार्नने कोकल्लदेवका समय ईस्वी सन् ८६० और ९०० के बीचमें निश्चित किया है और विजय सिंह देवका ११८० और ११९६ के बीच।

कल्चुरियोंके इन पन्द्रह नरेशोंमें सबसे महान् गांगेयदेव और उनके पुत्र कर्णदेव थे। गांगेय देवका समय था ई० सन् १०१५ से १०४० तक और कर्ण देवका ई० सन् १०४१ से १०७३ तक।

कलचुरि वंशकी सत्ता और संस्कृति दोनों ही इनके राज्य-कालमें चरम सीमाको पहुँची। गांगेयदेव और कर्णदेव दोनों ही महान् दिग्विजयी हुए। कर्णदेवका कलचुरि वंश सारे भारतवर्षका सबसे प्रधान राजवंश था और इस वंशका राज्य भारतवर्षका उस कालका सबसे बड़ा राज्य। कर्णदेवके दो राज्याभिषेक हुए—एक उनके पिता गांगेयदेवकी मृत्युके बाद ई० सन् १०४१ में और दूसरा ई० सन् १०५१ में सारे भारतको विजय करनेके पश्चात् भारत-सम्राट्के पदपर। त्रिपुरी उनके समय समस्त भारतकी राजधानी मानी जाती थी।

कलचुरि वंशके समयके अनेक शिलालेख और सिक्के मिले हैं। शिलालेखोंसे इनके महान् बल, प्रताप और वैभवका पता चलता है। कर्णदेवकी तुलना महाभारतके कर्णसे की गई है और आधुनिक इतिहासज्ञोंने उन्हें भारतीय नेपोलियन कहा है। गांगेयदेवको विक्रमादित्यकी उपाधि थी। कलचुरि राजाओंकी अन्य उपाधियोंमें परमेश्वर, अश्वपति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधिपति मुख्य थीं। इन उपाधियोंसे इनकी महत्ताका पता लगता है। इनके समयके, विशेषकर गांगेयदेवके समयके, सिक्कोंमें सोनेके सिक्के भी मिलते हैं। इन सोनेके सिक्कोंमेंसे कुछका वज़न लगभग ६२ ग्रेन तक है।

कलचुरियोंके समय वास्तु-मूर्ति-कलाका बड़ा उत्कर्ष हुआ। इस कालकी अनेक चीज़ें अब भी त्रिपुरीके आसपास प्रचुर परिमाणमें मिलती हैं। कलचुरि पहले बौद्ध थे और बादमें उन्होंने शैव मत ग्रहण कर लिया था। साहित्यकी भी इनके कालमें काफ़ी उन्नति हुई थी। संस्कृतके प्रसिद्ध कवि राजशेखर इन्हींकी सभाके कवि-रत्न थे! शासन-व्यवस्थामें भी ये अपने पहलेके किसी भी उन्नत राजवंशके पीछे नहीं रहे।

गांगेयदेवके वक्त महमूद गज़नवीके भारतपर १८ हमले हुए, लेकिन गांगेयदेवके प्रतापके कारण महमूदका साहस त्रिपुरीपर आक्रमण करनेका

नहीं हुआ। उसके बाद उसके सूबेदार अहमदने जब कलचुरियोंके राज्य-पर आक्रमण किया तब गांगेयदेवने उसे बुरी तरह हराया।

संसारमें जिसका उत्थान हुआ है उसका पतन भी अवश्यंभावी है। प्रतापी कलचुरि वंशका विजयसिंह देवके समय पतन हुआ।

जिस समय विजयसिंह देव त्रिपुरीपर राज्य कर रहे थे उस समय त्रिपुरीकी तो पतित अवस्था थी ही, परन्तु सारा भारतवर्ष ही पृथ्वीराज और जयचन्दके कलह तथा अन्य अनेक कारणोंसे निर्बल हो रहा था। न तो ऐसा कोई बलशाली राज्य था और न ऐसा बलवान् सम्राट्, जो बढ़ते हुए इस्लामसे भारतवर्षकी रक्षा कर सकता। महमूद गज़नवीके आक्रमणोंने भी भारतको कमज़ोर बना दिया था, लेकिन उसके समय गांगेयदेव सदृश बलशाली सम्राट् मौजूद थे और गांगेयदेवके पश्चात् भी उनके पुत्र कर्णदेवके सदृश पराक्रमी सम्राट् हुए।

सन् ११७५ ईस्वीसे भारतपर मुहम्मद गोरीके आक्रमण आरंभ हुए। सन् ११९१ मे वह पृथ्वीराजसे हारा, किन्तु सन् ११९२ में उसने पृथ्वीराजको हराया और सन् ११९४ में जयचन्दको। इन विजयोंके बाद मुहम्मद गोरी अपने भारतीय साम्राज्यको अपने .गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबकको देकर गोर लौट गया। इस वक्त़ त्रिपुरीपर विजयसिंह देवका राज्य था और इस नाटककी घटनाका यही काल है।

विजयसिंह देवका मंत्री सुरभी पाठक नामक व्यक्ति था। सुरभी पाठककी सहायतासे गोंड़ यदुरायने त्रिपुरी राज्यपर अपना आधिपत्य जमाया। मण्डलापर उस समय नागदेव नामक गोंड़ राजा राज्य करता था। त्रिपुरी-पर विजयसिंह देवके बाद किसी कलचुरि राजा और मण्डलापर नागदेवके पश्चात् नागदेवके किसी वंशजके राज्यका इतिहासमें उल्लेख नहीं मिलता। यदुरायके वंशका नाम राजगोंड़-वंश हुआ और विजयसिंह देवके बाद मराठोंके उत्पात तक त्रिपुरीपर इसी वंशने राज्य किया। इसी वंशमें प्रसिद्ध गोंड़ राजा संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती हुई।

यदुरायके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जो कुछ हो, इतिहासज्ञोंका बहुमत यह मानता है कि वह गोंड़ था और उसने एक नये राजवंशकी स्थापना की थी। इतिहासज्ञ यह भी मानते हैं कि यह कार्य कल-

चुरियोंके मंत्री सुरभी पाठककी सहायतासे हुआ। अधिकांश इतिहासज्ञोंने कहा है कि यदुरायके दो विवाह हुए—एक नागदेवकी कन्या रत्नावलीसे और दूसरा किसी क्षत्रिय कन्यासे। उसका वंश चला इस क्षत्रिय कन्याकी सन्ततिसे, इसलिए राजपूत और गोंड़-रक्तके मिश्रणके कारणसे इस वंशका नाम राजगोंड़-वंश हुआ।

इस कालका ब्योरेवार इतिहास नहीं मिलता। कलचुरियोंके पतन और गोंड़ोंके उत्थानके कारणके सम्बन्धमे भी इतिहासज्ञ मौन हैं। व्यक्तिगत उत्थानकी अभिलाषा ही यदुराय और सुरभी पाठकके कार्योंका कारण हो सकती है, यही इतिहासज्ञोंका अंदाज़ है, लेकिन इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं।

ऐतिहासिक घटनाओंमें नाटक उपन्यास या कहानी-लेखकको कितनी स्वतंत्रता लेनेका अधिकार है और कितनी नहीं, इस संबन्धमें मैंने अपना विनम्र मत अपने एक ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' की भूमिकामे लिखा है—

"मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी-लेखकको यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी पुरानी कथाको तोड़-मरोड़ कर उसे एक नयी कथा ही बना दे। हाँ, कथाका अर्थ (interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"

कलचुरियोंके पतन और राजगोंड़-वंशके उत्थान तथा तत्संबन्धी अन्य बातोंके सम्बन्धमें मैंने इसी नीतिका अनुसरण किया है।

इस नाटकके मुख्य पात्र विजयसिंह देव, सुरभी पाठक, यदुराय और नागदेव ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। यदुरायकी क्षत्रिय पत्नीको मैंने विजयसिंह देवकी कन्या माना है। इतिहासमें नाम न मिलनेके कारण मैंने उसका नाम रेवासुन्दरी रखा है। चण्डपीड, देवदत्त और विन्ध्यबाला काल्पनिक पात्र हैं। प्राचीनताकी झलक लानेके लिए मैंने संबोधन प्राचीन ही रखे हैं। साथ ही दृश्य और वेश-भूषा भी उसी कालके अनुरूप रहें, इसका ध्यान रखनेकी भी कोशिश की है।

इस नाटकके लिखनेमें निम्नलिखित ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है: (१) विन्सेण्ट स्मिथद्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ एन्शेण्ट इंडिया' (२) सी० वी० वैद्य द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ मेडीवल हिन्दू इंडिया', (३)

सेण्ट्रल प्राविन्सेज गैज़ेटियर, (४) जबलपुर डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियर, (५) मण्डला डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियर, (६) रा० ब० हीरालालद्वारा लिखित 'जबलपुर-ज्योति,' (७) रा० ब० हीरालालद्वारा लिखित 'मण्डलामयूख' (८) रा० ब० हीरालालकृत 'इन्सक्रिपशन्स इन सी० पी० एण्ड बरार', (९) आर० डी० बैनरजीकृत 'त्रिपुरी एण्ड देअर मान्यूमेण्ट्स', (१०) बिशप चैटरटनद्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ गोण्डवाना', (११) सी० जे० ब्राउनकृत 'दि कॉइन्स ऑफ इंडिया'।

इस नाटकके एक पद्यको छोड़कर जो दूसरे अंकके छठवें दृश्यमें रेवासुन्दरीद्वारा गाया गया है, और जो मेरा लिखा हुआ है, शेष सारे पद्य मेरी पुत्री रत्नकुमारीने लिखे हैं।

गोपालबाग, जबलपुर
विजयादशमी, संवत् १९९७

गोविन्ददास

दूसरे संस्करणका निवेदन

'कुलीनता' नाटकको मैंने अपने अन्य नाटकोंके साथ-साथ सन् १९४२ में जेलमें दुहराया था और इस नाटकमें मैंने जितने परिवर्तन किये, अन्य किसी नाटकमें नहीं। इसमें अब तीन अंकोंके स्थानपर चार अंक हो गये हैं। नयी आवृत्तिमें यह उन सब परिवर्तनोंके साथ छप रहा है जो इसमें सन् १९४२ में किये गये थे।

फाल्गुन शुक्ल १५, २००४]

गोविन्ददास

नाटकके मुख्य पात्र

पुरुष

यदुराय — एक गोंड़ सैनिक

विजयसिंह देव — त्रिपुरीका कलचुरि क्षत्रिय राजा

सुरभी पाठक — विजयसिंहदेवका मंत्री और यदुरायका गुरु

चण्डपीड — विजयसिंहदेवका सेनापति, पीछेसे मंत्री

देवदत्त — विजयसिंहदेवका उपसेनापति, पीछेसे सेनापति

नागदेव — मण्डलाका गोंड़ राजा

स्त्री

रेवासुन्दरी — विजयसिंह देवकी कन्या

विन्ध्यबाला — देवदत्तकी पत्नी, रेवासुन्दरीकी सखी

स्थान

त्रिपुरी, मण्डला, धुआँधार

कुलीनता

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राजप्रासादके बाहर खुला हुआ मैदान

समय—तीसरा पहर

[पीछेकी ओर दूर पाषाणके विशाल राजभवनके बाहरका कुछ मार्ग दिखाई देता है। राजभवन बौद्ध शिल्पकलाके अनुसार बना है। महाद्वारपर कलचुरि वंशका झंडा फहरा रहा है। मैदान विजयादशमीके युद्धकला-प्रदर्शनके लिए सजाया गया है। पीछे और दोनों ओर ऊँचे ऊँचे काष्ठ-स्तभोंपर, जो सुन्दर रंगोंसे रँगे हुए हैं, बन्दनबार बाँधे गये हैं। हर स्तंभके ऊपर कलचुरि वंशका झंडा लगा है। पीछेकी ओर पंक्तिमें खड़ी सेनाका कुछ अंश दिख पड़ता है। सैनिक कवच तथा शिरस्त्राण पहने हैं और धनुष, तरकश, खड्ग, ढाल, छुरिका, शल्य आदि आयुधोंसे सुसज्जित हैं। बायीं ओर एक ऊँचा चबूतरा बनाया गया है। इसपर रंगबिरंगी बिछावन है। बिछावनपर बीचमें सुवर्णका रत्नजटित सिंहासन रखा है। सिंहासनपर गद्दी है और उसपर तकिये। यह गद्दी तथा तकिये कौशेय वस्त्रसे ढके हैं। इस वस्त्रपर सुनहरी काम है और गद्दीके सामनेके सिरेपर मोतीकी झालर। सिंहासनके सम्मुख सुवर्णका रत्न-जटित 'पादपीठ' है। इसपर भी सुनहरी कामवाले कौशेय वस्त्रसे ढकी गद्दी है। पादपीठके चारों ओर मोतीकी झालर लगी है। सिंहासनके दाहिनी और बायीं ओर सुवर्णकी आसंदियों*की कई पंक्तियाँ हैं। इन आसंदियोंपर भी

* एक प्रकारकी कुर्सियाँ जिन्हें उस समय आसंदी कहते थे।

सुनहरी कामसे युक्त कौशेय वस्त्रसे ढकी गद्दियाँ हैं और उनपर तकिये। सिंहासनपर विजयसिंह देव बैठे हैं। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्षकी है। साँवला रंग, दुबला एवं ठिंगना शरीर है। सिर और मूँछोंके लम्बे बाल श्वेत हो चले हैं। सिरपर अर्धचंद्राकार पुष्पमाला बड़ी सुन्दरतासे बँधी है। शरीर-पर उत्तरीय × और अधोवस्त्र ऽ धारण किये हैं। ये वस्त्र कौशेयके हैं। इनकी किनार सुनहरी है और उत्तरीयके कोनोंपर राजहंस बने हैं। वह कानोंमें कुंडल, गलेमें हार, भुजाओंपर केयूर *, हाथोंमें वलय + और उँगलियोंमें मुद्रिकायें पहने हैं। सब आभूषण रत्नजटित हैं। उसके मस्तकपर त्रिपुण्ड और पैरोंमें काष्ठकी पादुकाएँ हैं। मुख निस्तेज पर आँखें बड़ी और नाक लम्बी है। सिंहासनके पीछे पाँच युवतियाँ खड़ी हैं। बीचकी युवती राजा-पर हाथी दाँतकी दाँड़ीका श्वेत कौशेय वस्त्रका जरीका छत्र लगाये है। छत्रके चारों ओर मोतीकी झालर है। बीचकी स्त्रीके दोनों ओर दो दो युवतियाँ हैं। इनमेंसे दो सुवर्णकी दाँड़ी वाले श्वेत सुरा गायकी पुच्छके चँवर डुला रहीं हैं और दो सुवर्णकी दाँड़ीवाले खसके व्यजन। पाँचों साँवले वर्णकी होने पर भी सुन्दरियाँ हैं। सब कौशेयके अधोवस्त्र पहने हैं तथा उसी प्रकारके वस्त्र वक्षस्थलपर बाँधे हैं। सभी रत्नजटित आभूषण भी धारण किये हैं। सिर सबके खुले हैं। केशोंके जूड़े बँधे हैं जिनमें पुष्पमालाएँ हैं। मस्तकपर लाल टिकली है। दाहिनी ओरकी आसंदियोंपर रेवासुन्दरी, विन्ध्यबाला तथा अन्य स्त्रियाँ बैठी हैं। किसी प्रकारका परदा नहीं है। रेवासुन्दरीकी अवस्था लग-भग सोलह वर्षकी है। देखनेमें वयसे वह कुछ अधिक दिखती है। वह गौर वर्णकी परम सुन्दर युवती है। गुलाबी रंगकी कौशेय वस्त्रकी साड़ी पहने और वक्षस्थलपर आसमानी रंगका कौशेय वस्त्र बाँधे है। दोनों वस्त्रोंपर सुनहरी काम है। रत्नजटित आभूषण भी वह धारण किये है। विन्ध्यबालाकी अवस्था लगभग अट्ठाईस वर्षकी है। वह भी सुन्दर है। उसकी वेशभूषा भी रेवासुन्दरीके समान ही है। अन्य स्त्रियाँ भिन्न भिन्न वयकी हैं; कोई गौर, कोई गेहुँए वर्णकी, कोई साँवली और कोई श्याम। वेशभूषा सबकी एक-सी है; परन्तु वस्त्रोंके रंग अलग अलग। सिंहासनके बायीं ओरकी आसंदियोंमेंसे पहली आसंदीपर सुरभी पाठक बैठा है। सुरभी पाठक लगभग ७० वर्षका

× दुपट्टा। ऽ धोती। * भुजबन्ध। + कड़े।

बहुत ऊँचा, गठे हुए शरीर और गौरवर्णका मनुष्य है । सिरके बाल घुटे हैं। पीछेकी ओर केवल गोखुरके बराबर चौड़ी गाँठ बँधी हुई शिखा है। बड़ी बड़ी मूँछें और नाभि तक फैली हुई दाढ़ी है। शिखा, मूँछें, दाढ़ी और भवोंके सारे बाल श्वेत हो गये हैं। मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड है। श्वेत रंग और बिना किसी रंगकी किनारके सूती और मोटे उत्तरीय तथा अधोवस्त्र हैं। शरीरपर कोई आभूषण नहीं है। कन्धेपर सफेद मोटा यज्ञोपवीत दिखायी देता है। भुजाओंपर भस्मकी तीन तीन पंक्तियाँ लगी हुई हैं। पैरोंमें काष्ठकी पादुकाएँ हैं, मुखपर कान्ति है और बालोंकी श्वेतताके अतिरिक्त वृद्धावस्थाका कोई प्रभाव मुख अथवा शरीरपर दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके पश्चात्की दूसरी आसंदीपर चण्डपीड बैठा है। चण्डपीड लगभग २७–२८ वर्षका साँवले रंगका ठिंगना और मोटा मनुष्य है। सिरके बाल काले और लम्बे हैं। बड़ी बड़ी काली मूँछें और काले गलमुच्छे हैं। आँखें बड़ी और नाक लम्बी है। उसका सिर खुला है, मस्तकपर केशरका त्रिपुण्ड लगाये है। श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र शरीरपर धारण किये है। ये वस्त्र कपासके पतले सूतके बने हैं और इनकी किनार सुनहरी है। उसके कानोंमें भी कुण्डल, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर, हाथोंमें वलय हैं। ये सब आभूषण सुवर्णके बने हैं और इनमें रंग बिरंगे रत्न जड़े हुए हैं। पैरोंमें वह भी काष्ठकी पादुकाएँ धारण किये है। उसकी पीठपर तरकश, बाँयें कन्धेपर धनुष और बाँयी ओर कमरमें जड़ाऊ मूठका खड्ग पड़ा है। चण्डपीडकी आसंदीके निकटकी आसंदीपर देवदत्त बैठा हुआ है। देवदत्त लगभग तीसवर्षका, गेहुँए रंग तथा साधारण कदका साधारणतया सुंदर मनुष्य है। छोटी छोटी मूँछें हैं। वेशभूषा चण्डपीड़के सदृश ही है। आयुधोंसे भी वह सुसज्जित है। बाँयी ओरकी शेष आसंदियोंपर सामन्त और कुलपुत्र * बैठे हैं। सामन्तों और कुलपुत्रोंकी वेशभूषा चण्डपीडके सदृश ही है; परन्तु वे आयुधोंसे सज्जित नहीं हैं। सभीके मस्तकोंपर केशरका त्रिपुण्ड है। चबूतरेपरके सिंहासन तथा सब आसंदियोंका मुख दाहिनी ओर है। दाहिनी ओर नागरिकोंकी एक भीड़ खड़ी है। भीड़का कुछ भाग दिखाई देता है।

* राजवंशमें उत्पन्न राजाके नातेदार।

नागरिक भिन्न-भिन्न वय और वर्णके हैं। सभी उत्तरीय तथा अधोवस्त्र धारण किये हैं। कोई कोई आभूषण भी पहने हैं। मैदानके बीचका स्थल रिक्त है जो सैनिकोंके युद्धकला-प्रदर्शनके लिए खाली रखा गया है। इस स्थलके दाहिने सिरेपर बाणोंके निशानोंके लिए कुछ विशेष प्रकारके 'वेध' बनाये गए हैं। नेपथ्यसे शृंग, रम्पट, शंख, भेरी और जयघण्ट पंच महावाद्योंकी धीमी ध्वनि आ रही है। इस समय इस रिक्त स्थलपर यदुराय अपनी कलाका प्रदर्शन कर रहा है। यदुरायकी अवस्था लगभग २२–२३ वर्षकी है। यद्यपि वर्णमें वह गौर न होकर साँवला है, तथापि वर्णकी गौरताके अभावमें सौन्दर्यकी किसी प्रकारकी कमी नहीं। उसका शरीर ऊँचा है, न मोटा और न दुबला। मुखके तथा शरीरके सब अवयव ढले हुए-से प्रतीत होते हैं। छोटी-छोटी चढ़ी हुई मूँछें हैं। शरीरपर वह कवच तथा सिरपर शिरस्त्राण धारण किये है। पैरोंमें चर्मके जूते हैं। शस्त्रोंसे भी सुसज्जित है। यदुराय धनुषपर बाण चढ़ा चढ़ा कर 'वेधों' में निशाने लगा रहा है। सारे दर्शक उसकी ओर देख रहे हैं। दर्शकोंमें तीन व्यक्तियोंकी दृष्टि सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करती है। सुरभी पाठककी दृष्टिमें उत्साह, चण्डपीडकी दृष्टिमें उद्विग्नता और रेवासुन्दरीकी दृष्टिमें प्रेम है। जब जब यदुरायके कृत्य पूर्ण होते हैं तब तब 'साधु साधु' 'धन्य-धन्य' इत्यादि शब्दोंसे सारा स्थल गूँज उठता है और उस समय सुरभी पाठकका उत्साह, चण्डपीडकी उद्विग्नता और रेवासुन्दरीका प्रेम भी सीमा उल्लंघन करता दिखाई देता है। ऐसे अवसरोंपर विन्ध्यबाला बार बार रेवासुन्दरीकी ओर एक भेदभरी दृष्टिसे देखती है, परन्तु रेवासुन्दरी यदुराय तथा उसके कृत्योंको देखनेमें इतनी मग्न है कि उसका ध्यान ही विन्ध्यबालाकी ओर नहीं जाता।]

सुरभी पाठक—(बाण-वेध समाप्त होते ही विजयसिंह देवसे) परम भट्टारक, बाण-वेधमें यदुरायको ही सर्वश्रेष्ठ घोषित किया जाय न ?

विजयसिंह देव—और किसीका प्रदर्शन तो अब नहीं होना है ?

सुरभी पाठक—नहीं; यही अन्तिम योद्धा था।

विजयसिंह देव—तब तो इसके सर्वश्रेष्ठ होनेमें कोई सन्देह ही नहीं।

सुरभी पाठक—(खड़े हो ऊँचे स्वरसे)—सैनिक यदुराय गोंड़ सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित किया जाता है। (बैठ जाता है।)

जनसमुदाय—(अत्यन्त उच्च स्वरमें) धन्य है ! धन्य है ! साधु ! साधु ! यदुराय गोंड़की जय ! परममाहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकालिंगाधिपति महा-राजाधिराज, राजराजेश्वर सम्राट् श्रीविजयसिंह देवकी जय !

[रेवासुन्दरीकी आँखोंसे नेह टपकने-सा लगता है । वह एकटक अत्यधिक प्रेमभरी दृष्टिसे यदुरायकी ओर देखती है । यदुरायकी नजर भी रेवासुन्दरीपर पड़ती है और दोनोंकी दृष्टि मिल जाती है । विन्ध्यबाला इस दृष्टि-सम्मिलनको देख एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती है । चण्डपीड भी इसे देखता है और अब तो वह अत्यधिक उद्विग्न हो उठता है। परन्तु अन्य व्यक्तियोंकी नजरमें यदुराय-के कृत्य इस प्रकार भर गये हैं कि वे इस समय स्वयं यदुरायकी ओर भी न देख, एक दूसरेकी ओर देख रहे हैं और आँखों, ओठों आदिसे एक दूसरेको यदुरायके कृत्य कितने आश्चर्यजनक तथा महान् थे इसकी सूचना-सी कर रहे हैं । ऐसी दशामें किसे यदुराय, रेवासुन्दरी, विन्ध्यबाला और चण्डपीडकी ओर देख इनकी भावनाओंका पता लगानेका अवकाश है !]

सुरभी पाठक—(जयघोष समाप्त होनेपर विजयसिंह देवसे) तो अब आजके शल्य, खड्ग और छुरिका युद्धोंमें जो जो सर्वश्रेष्ठ आया है उससे यदुरायका युद्ध कराया जाय ?

विजयसिंह देव—हाँ।

सुरभी पाठक—(खड़े होकर) अब यदुराय गोंड़ भुक्तिपति गदाधर-सिंह कलचुरिसे शल्य युद्ध करेगा जो अबतकके शल्य-युद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ आये हैं। (बैठ जाता है।)

[सैनिकोंकी पंक्तिमेंसे गदाधरसिंह रंगभूमिमें आता है। यदुराय और गदाधरसिंहका शल्य-युद्ध आरंभ होता है । दोनोंकी युद्ध-कुशलता, फुर्ती, पैंतरेबाजी दर्शकोंको मुग्ध-सा कर देती है जो उनकी दृष्टिसे ज्ञात होता है।

'धन्य-धन्य' 'साधु-साधु' शब्दोंका बार-बार उच्चारण होता है। अन्तमें गदाधरसिंह परास्त होता है। रेवासुन्दरी और यदुरायकी नजरें फिर मिलती हैं। विन्ध्यबालाकी चिन्ता तथा चण्डपीडकी उद्विग्नता और बढ़ती हुई प्रतीत होती है।]

जनसमुदाय—(अत्युच्च स्वरमें) गोंड़ यदुरायकी जय! परम माहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकालिंगाधिपति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् श्रीविजयसिंह देवकी जय।

सुरभी पाठक—(खड़े हो ऊँचे स्वरसे) यदुराय गोंड़ सर्वश्रेष्ठ शल्यधर घोषित किया जाता है। (पुनः जयजयकार)

सुरभी पाठक—अब आजके खड्ग-युद्धके अब तकके सर्वश्रेष्ठ योद्धा विषयपति भीमसिंह कलचुरिसे यदुरायका खड्ग-युद्ध होगा। (बैठ जाता है।)

[सैनिक पंक्तिमेंसे भीमसिंहका रंगभूमिमें प्रवेश। यदुराय और भीमसिंहका खड्गयुद्ध होता है। शल्य-युद्धके समान ही इस युद्धमें भी दोनोंकी फुर्त्ती और पैंतरेबाजी अत्यधिक आकर्षक रहती है। अन्तमें भीमसिंह भी हारता है। यदुराय और रेवासुन्दरीकी दृष्टि फिर मिलती है। विन्ध्यबालाकी चिन्ता अब कुछ शमन होती-सी दिखती है, पर चण्डपीडकी उद्विग्नता और बढ़ती हुई। जनसमुदाय उच्च स्वरसे फिर जयजयकार करता है।]

सुरभी पाठक—(खड़े होकर) यदुराय गोंड़ सर्वश्रेष्ठ 'असिधारी' घोषित किया जाता है। (पुनः जयजयकारकी ध्वनि)

सुरभी पाठक—आजके छुरिका-युद्धके अबतकके विजेता राजस्थानीय केशरीसिंह कलचुरिसे अब यदुराय गोंड़का युद्ध होगा।

(बैठ जाता है।)

[सैनिकोंमेंसे केशरीसिंह रंगभूमिमें आता है। छुरिका-युद्धमें दोनों योद्धाओंको एक दूसरेके अत्यन्त सन्निकट आकर युद्ध करना पड़ता है अतः इस युद्धका आकर्षण और अधिक हो जाता है। अन्तमें यदुराय ही जीतता है। पुनः जयजयकार। रेवासुन्दरी और यदुरायकी दृष्टियोंका फिर सम्मिलन। विन्ध्यबालाकी चिन्ता चली गई-सी प्रतीत होती है और अब वह रेवासुन्दरीकी ओर न देखकर यदुरायकी ओर देख रही है। चण्डपीडकी उद्विग्नतामें निराशाका कुछ सम्मिश्रण-सा जान पड़ता है।]

सुरभी पाठक—(खड़े होकर) छुरिका-युद्धमें भी यदुराय ही सर्वश्रेष्ठ घोषित किया जाता है। (बैठ जाता है।)

(पुनः जयजयकार)

चण्डपीड—(विजयसिंह देवसे, एकाएक मानों किसी तन्द्रासे जागा हो) परम भट्टारक, यदुरायको अब गदाधरसिंह भीमसिंह और केशरीसिंह तीनोंसे एक साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी जाय।

सुरभी पाठक—(आश्चर्यसे) एक अनेकसे युद्ध करे ?

चण्डपीड—क्या हानि है। अनेक बार युद्ध-स्थलपर ऐसे अवसर आ जाते हैं जब एक योद्धाको अनेकसे संग्राम करना पड़ता है।

विजयसिंह देव—(सहज स्वभावसे, जो उसके स्वरसे जान पड़ता है) हाँ, क्या हानि है!

[रेवासुन्दरी और विन्ध्यबाला दोनोंके मुखपर क्रोधके भाव दृष्टिगोचर होते हैं।]

सुरभी पाठक—(खड़े हो, उच्च स्वरसे, परन्तु उसके स्वरमें अब वैसा उत्साह नहीं है) अब राजस्थानीय केशरीसिंह, भुक्तिपति गदाधरसिंह, और विषयपति भीमसिंह तीनोंसे अकेला यदुराज गोंड़ युद्ध करेगा; क्योंकि रणभूमिमें अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते हैं जब एक वीरको अनेकसे एक साथ लड़ना पड़ता है।

[केशरीसिंह, गदाधरसिंह, और भीमसिंह एक साथ रंगभूमिमें आते हैं। एक ओर यदुराय और दूसरी ओरसे इन तीनोंका एक साथ युद्ध आरंभ होता है। कभी शल्य चलते हैं; कभी खड्ग चमकते हैं, कभी छुरिकाएँ उठती और गिरती हैं। कैसी फुर्ती है ! कैसी पैंतरेबाज़ी ! कभी कभी तो चारोंकी कृतियोंमें इतनी शीघ्रता आ जाती है कि कौन व्यक्ति कौन है, यह पहचानना कठिन हो जाता है । अब तो दर्शकोंकी भावनाओंका उद्वेग चरम सीमाको पहुँच जाता है। चारों भटोंके कृत्यों तथा उनके क्षणक्षण समीप आने और फिर दूर हटने इत्यादि क्रियाओंपर दर्शकोंकी पुतलियाँ नाचती-सी प्रतीत होती हैं। रेवासुन्दरी इस प्रकार युद्ध देखती है मानों वह अपनी साँस ही रोके हुए हो। जब उसकी साँस उसके रोके नहीं रुकती और आतुर हो निकलती है तब उसकी नाकके नथुने और ओठ काँपनेसे लगते हैं । विन्ध्यबालाका अब रेवासुन्दरीकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं है । वह एकटक यदुरायकी ओर देख रही है । सुरभी पाठक और चण्डपीड दोनों ही आतुर दीख पड़ते हैं । अन्तमें केशरीसिंह, गदाधरसिंह और भीमसिंह तीनोंपर यदुराय विजय प्राप्त करता है। ऐसा जयघोष होता है कि कानोंके परदे फटनेसे लगते हैं । रेवासुन्दरी-की आँखोंमें आँसू छलछला आते हैं। यदुराय जब उसकी ओर देखता है तब वह कठिनाईसे अपने आँसुओंका गिरना रोकनेमें समर्थ होती है। विन्ध्यबाला अब पल-पलपर अपनी दृष्टि घुमाती हुई कभी रेवासुन्दरी और कभी यदुराय-की ओर देखती है। चण्डपीड ऐसा उद्विग्न और निराश-सा दिखता है कि जान पड़ता है उसे अपने आसनपर बैठना कठिन हो गया है। सुरभी पाठकका उत्साह भी चरमसीमाको पहुँच जाता है।]

सुरभी पाठक—(विजयसिंह देवसे) तो, महाराज, इस विजया-दशमीके युद्धकला-प्रदर्शनका सर्वश्रेष्ठ वीर यदुरायको घोषित किया जाय न ?

विजयसिंह देव—(सहज भावसे) अवश्य....अवश्य।

सुरभी पाठक—(खड़े होकर) इस विजयादशमीके युद्धकला-प्रदर्शनका सर्वश्रेष्ठ वीर यदुराय गोंड़ घोषित किया जाता है।

[जोरकी जयजयकार]

सुरभी पाठक—(जयघोषके पश्चात्) पारितोषिक वितरण परमभट्टारक, महाराजाधिराज कल इसी स्थलपर प्रातःकाल करेंगे।

[विजयसिंहदेव खड़ा होता है। चबूतरेपर बैठे हुए सब स्त्री पुरुष खड़े हो जाते हैं। कितने उत्साहसे रेवासुन्दरी खड़ी होती है और कितना हतोत्साह हो चण्डपीड !]

परदा गिरता है।

दूसरा दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राजप्रासादकी एक दालान

समय—संध्या

[दालानके पीछेकी रँगी हुई भित्ति दिखती है, जिसमें कोई द्वार इत्यादि नहीं है। दोनों ओर कुंभी + और भरणी * से युक्त स्तंभ हैं। विजयसिंह-देव, रेवासुन्दरी और चण्डपीडका प्रवेश।]

रेवासुन्दरी—हाँ, पिताजी, कमसे कम चार वर्षोंके एक युगसे तो मुझे सुधि है। मैंने तो किसी भी विजयादशमीकी युद्धकला-प्रदर्शन-में किसी भी भट या किसी भी बलाधिकृतका कार्य यदुरायके सदृश नहीं देखा।

विजयसिंह देव—तुझे तो एक युगका ही स्मरण है, बेटी, पर मुझे चार वर्षोंके नौ युगों और बारह वर्षोंके तीन युगोंका। मैंने भी यदुरायके समान योद्धा नहीं देखा।

+ चौकी। * टोड़ी।

रेवासुन्दरी—(और अधिक उत्साहसे) पिताजी, उसकी पटुता, पराक्रम, वीरता, साहस, एक क्या सभी प्रशंसनीय थे। जब वाणवेधके लिए वह धनुष चढ़ाता, तब कब उसने धनुष नबाया, कब तरकशसे वाण निकाला, कब उसे प्रत्यंचापर चढ़ाया और कब छोड़ा यही जानना कठिन था और वेधपर उसका वाण ऐसा लगता था मानों पहलेहीसे वहाँ पहुँचा हुआ हो। शल्य, खड्ग, छुरिका सभी युद्धोंमें उसकी कृतियों, उसके अवयवोंके चांचल्यसे उसके शरीरमें अस्थियाँ हैं या नहीं, इसीमें सन्देह होने लगता था। जब उसके हाथोंमें लिए हुए शस्त्र इधरसे उधर और उधरसे इधर घूमते तब उनकी त्वराकी तुलना केवल विद्युत्से की जा सकती थी। पिताजी, मै तो आजका यह दृश्य जन्म-भर न भूल सकूँगी।

विजयसिंह देव—मैं तुझसे सर्वथा सहमत हूँ, बेटी।

रेवासुन्दरी—(मग्न-सी होकर) पिताजी, यदुराय हमारी सेनाका भूषण है; नहीं, नहीं, वह त्रिपुरीके, सारे साम्राज्यका रत्न है। मेरी तो इच्छा होती है कि जब कल आप उसे इस वर्षकी युद्धकला-प्रदर्शनका सर्वश्रेष्ठ पारितोषिक खड्ग दें, तब मैं उसके मस्तकपर कुंकुम लगाऊँ।

विजयसिंह देव—(कुछ सोचते हुए) हाँ, क्या हानि है? (कुछ रुक कर चण्डपीडसे) क्यों, कहो चण्डपीड?

चण्डपीड—(अत्यन्त निराशासे) हानि....हानि तो कोई नहीं, परन्तु....परन्तु यह एक नयी प्रथा होगी। अबतक....

रेवासुन्दरी—(बीचही में) नयी प्रथा होगी तो नयी प्रथा सही। क्या जो अबतक नहीं हुआ है वह भविष्यमें हो ही नहीं सकता? संसारमें नयी बात करना ही तो विशेषता है।

चण्डपीड—यह....यह तो ठीक है, राजकुमारी, किन्तु....किन्तु कोई भी नई बात करनेके पहले बहुत सोचने विचारनेकी आवश्यकता होती है, विशेषकर आपके कुलीन राजकुलमें।

रेवासुन्दरी—(विजयसिंह देवसे) पिताजी, मेरी तो इच्छा उसके मस्तकपर तिलक करनेकी अवश्य है।

विजयसिंह देव—पर, बेटी, चण्डपीडने जो एक बात कही वह ठीक है।

रेवासुन्दरी—कौन-सी ?

विजयसिंह देव—हमारे कुलीन राजकुलमें सहसा कोई बात नहीं की जा सकती। आगे-पीछेके अनेक विचार करने पड़ते हैं।

रेवासुन्दरी—(निराशासे) तो सोच लीजिए, महासेनापतिजी और महामंत्रीजी दोनोंसे विचार कर लीजिए। मैं तो जो कुछ करना चाहती हूँ आपकी आज्ञासे। जब आप भी मानते हैं कि आपने भी जीवनमें यदुरायके समान वीर नहीं देखा तो ऐसे वीरको पुरस्कृत करते समय यदि आपकी पुत्री उसके ललाटपर कुंकुम लगाए तो इसमें मैं तो कोई अनुचित बात नहीं मानती।

[कुछ देर निस्तब्धता]

विजयसिंह देव—अच्छा-अच्छा, तू अब विश्राम कर। दिन भर हो गया, थक गई होगी। तू जानती है कि यदि तेरे सिरमें भी पीड़ा हो जाती है तो मेरे प्राण मुँहमें आ जाते हैं।

रेवा सुन्दरी—पर इसका निर्णय कब कीजिएगा कि मैं यदुरायको तिलक करूँ या नहीं ?

विजयसिंह देव—परितोषक वितरण तो कल प्रातःकाल होगा। उसके पहले निर्णय हो जायगा।

रेवासुन्दरी—अच्छी बात है। (प्रस्थान)

[कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

विजयसिंह देव—(चण्डपीडसे) तो, चण्डपीड, रेवाने एक समस्या उत्पन्न कर दी; क्यों? बाल्यावस्थामें ही माँ मर गई थी, लाड़ली बेटी है न, सदा ही ऐसी समस्याएँ उपस्थित किया करती है।

चण्डपीड—परमभट्टारक समझते हैं कि यह समस्या केवल कुंकुम-की समस्या है?

विजयसिंह देव—(गंभीरतासे चण्डपीडकी ओर देखते हुए) क्यों, क्या तुम इसमें और भी कोई बात देखते हो?

चण्डपीड—श्रीमान् क्षमा करें तो कहूँ।

विजयसिंह देव—मुझसे कुछ भी कहनेमें तुम्हें क्षमा माँगनेकी आवश्यकता नहीं चण्डपीड, तुम जानते हो कि मैं तुम्हें त्रिपुरीका केवल महाबलाधिकृत न मान कर अपने पुत्रके समान समझता हूँ।

चण्डपीड—मुझपर महाराजकी जो कृपा और प्रेम है वह क्या मुझसे छिपा है, इसीलिए तो जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ सदा निःसंकोच होकर ही सेवामें निवेदन करता हूँ, परन्तु यह विषय कुछ ऐसा ही है कि वाणी कठिनाईसे खुलती है।

विजयसिंह देव—(कन्धेको थपथपाते हुए) नहीं, नहीं, चण्डपीड, कोई भी बात चाहे वह कैसी ही क्यों न हो, तुम सदा निःसंकोच होकर कहा करो। तुम्हारी इस प्रकारकी हिचकसे मुझे बड़ा दुःख होता है।

चण्डपीड—(गला साफ करते हुए) महाराज तो हैं सतोगुणके साक्षात् स्वरूप। ऐसा निर्मल हृदय भूतलपर मिलना कठिन है

और यह संसार है रजोगुण तथा तमोगुणसे ओतप्रोत; इसीलिए प्रपंचोंसे भरा हुआ।

विजयसिंह देव—मैं चाहे कैसा भी होऊँ चण्डपीड, पर संसार प्रपंची है इसमें सन्देह नहीं।

चण्डपीड—नहीं नहीं, श्रीमान् भी जैसा मैंने कहा ठीक वैसे ही हैं और संसार प्रपंचोंसे भरा है यह महाराज मानते ही हैं। इसीलिए अनेक बार मुझे परमभट्टारकको सचेत करनेकी धृष्टता करनी पड़ती है। (कुछ रुक कर) महाराज, यदुरायके प्रति राजकुमारीके इस खिंचावमें मैं भारी भय देखता हूँ।

विजयसिंह देव—(कुछ आश्चर्यसे) अच्छा!

चण्डपीड—हाँ, श्रीमान्....फिर क्षमा माँगकर निवेदन करता हूँ। स्त्रियोंमें स्वेच्छाचारिता तो नैसर्गिक है। इसीलिए उन्हें हर प्रकारके बन्धनोंमें रखनेका हमारा धर्म उपदेश करता है। सदा ही स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी रही हैं, पर यह स्वेच्छाचारिता आजकल बहुत बढ़ गई है। परमभट्टारक जानते ही हैं कि हालहीमें महाराज जयचन्दकी पुत्री, संयोगिताने किस प्रकार स्वयं पृथ्वीराजको आमंत्रित कर पृथ्वीराजके संग विवाह किया। परिणामस्वरूप देशपर विदेशियोंकी आपत्ति आ गई।

विजयसिंह देव—(विचारते हुए) तो तुम समझते हो कि रेवा यदुरायसे विवाह करना चाहती है?

चण्डपीड—यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। अपने लिए मैं श्रीमानको ईश्वरवत् मानता हूँ। कोई मिथ्या बात अथवा किसीपर किसी प्रकारका मिथ्या आरोप करनेकी यों ही मेरी प्रवृत्ति नहीं; फिर महाराजके सम्मुख मुझसे ऐसा पाप क्यों कर हो सकता है?

परन्तु स्त्रीके किसीके प्रति भी ऐसे खिंचावका अन्तिम परिणाम तो विवाह ही होता है।

विजयसिंह देव—(अत्यंत गंभीरतासे सोचते हुए) हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।

चण्डपीड—(विजयसिंहदेवपर प्रभाव पड़ते देख कुछ उत्साहसे) फिर श्रीमान्‌ने देखा नहीं कि आज यदुरायकी प्रत्येक सफलतापर राजकुमारी उसकी ओर किस प्रकारसे देखती थीं?

विजयसिंहदेव—(चण्डपीडकी ओर देखते हुए और आश्चर्यसे) अच्छा!

चण्डपीड—मैंने कहा न कि परमभट्टारकका हृदय है निर्मल। महाराजका ऐसी बातोंकी ओर ध्यान ही नहीं जाता। परन्तु हम लोग अपने उत्तरदायित्वको कैसे भूल सकते हैं? परमभट्टारकके पार्श्ववर्तियोंको तो जाग्रत अवस्थामें ही नहीं निद्रित स्थितिमें भी अपनी आँखें और कान खोले रहना पड़ता है।

[विजयसिंह देवका सिर झुक जाता है। चिन्ताका पूर्ण साम्राज्य उसपर छा-सा जाता है। चण्डपीड उसकी ओर देखता रहता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

चण्डपीड—(कुछ देर पश्चात्) फिर महाराज, संयोगिताने स्वेच्छाचारके पश्चात् भी एक क्षत्रियको ही वरा, यहाँ तो—

विजयसिंह देव—(सिर उठाकर, एकाएक बीचमें) हाँ, हाँ, हाँ, यहाँ तो गोंड़—गोंड़का प्रश्न है। शूद्र गोंड़का, अस्पृश्यके समान गोंड़का। फिर कहाँ जयचन्द्रका वंश और कहाँ कलचुरियोंका कुल। राठौर आज कान्यकुब्जमें बढ़े हैं, हमारा कुल महाभारत कालसे

चला आया है। हम हैहयवंशी सहस्रार्जुनके वंशज! गांगेयदेव और कर्णदेवके उत्तराधिकारी!

चण्डपीड—(अत्यन्त उत्साहसे) महाराज, मेरी नाड़ियोंमें भी तो उसी कुलीन कलचुरि कुलका रक्त बह रहा है। आपकी असीम कृपा, आपका अत्यधिक प्रेम तो मुझपर है ही, आपके तनसे स्वेदकी बिन्दु भी गिरनेके पहले मैं अपने रक्तके परनाले बहा दूँगा, परन्तु आपके साथ ही मुझे कलचुरि वंशका भी तो ध्यान है। कलचुरि कुलकी कुलीन राजकुमारीका एक गोंड, एक शूद्रके मस्तकपर कुंकुंम लगाना तो दूर रहा, उसका उस शूद्रको उस प्रकार देखना, जिस प्रकार राजकुमारी रेवासुन्दरी यदुरायकी ओर देख रही थीं, मेरी सहन शक्तिसे बाहरकी बात है।

विजयसिंहदेव—(उत्साहसे) ठीक....ठीक, चण्डपीड, तुम सर्वथा ठीक कह रहे हो। सच्चे कलचुरि, इस वंशके सच्चे शुभचिन्तकके मुखसे ही ऐसे वाक्य निकल सकते हैं।

चण्डपीड—और यह तो महाराज न जाने कैसे हमारी सेनामें ये शूद्र गोंड़ भी सैनिक होने लगे। युद्ध क्षत्रियोंका धर्म है, शूद्रोंका नहीं। सेनामें भरती होनेके पश्चात् क्षत्रियोंमें स्पर्द्धा एक स्वाभाविक बात हो जाती है। आपने मुझे जबसे महाबलाधिकृत बनाया है तभीसे मैं इन गोंड़ोंको सेनासे निकालनेकी बात सोच रहा हूँ। आज उस शूद्र यदुरायका तीन तीन कलचुरि केशरीसिंह, गदाधरसिंह और भीमसिंहसे उस प्रकारका युद्ध भी मैं तो अक्षम्य ही मानता हूँ। फिर ये तीनों कलचुरि साधारण व्यक्ति भी नहीं, एक राजस्थानीय, एक भुक्तिपति और एक विषयपति।

विजयसिंह देव—उचित, नितान्त उचित कथन है तुम्हारा।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

विजयसिंह देव—(कुछ देर पश्चात्) तब तो चण्डपीड, उस यदुरायको कल प्रातःकाल वह पारितोषिक भी नहीं दिया जा सकता।

चण्डपीड—मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। वरन्....वरन् मेरे मतानुसार तो उसका सेनामें रहना भी....

विजयसिंह देव—(बीचहीमें) सेनामें ही नहीं रेवाके कारण त्रिपुरीमें रहना भी भयानक है।

[चण्डपीड कुछ नहीं कहता। विजयसिंह देवका सिर झुक जाता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

विजयसिंह देव—(कुछ देर पश्चात्) तो फिर क्या करना, चण्डपीड?

चण्डपीड—(शान्तिसे) विचार लेंगे, श्रीमान्, अभी तो रात्रि-भर शेष है।

विजयसिंह देव—(विचारते हुए) महामंत्रीजीकी सम्मति ली जाय?

चण्डपीड—जैसा श्रीमान् उचित समझें, परन्तु–परन्तु (चुप हो जाता है।)

विजयसिंह देव—(चण्डपीडकी ओर देखते हुए) परन्तु पर रुक क्यों गये, चण्डपीड?

चण्डपीड—(झिझकके साथ) क्या....क्या कहूँ महाराज, आपके अत्याधिक सन्निकट रहते हुए, आपकी इतनी कृपा और स्नेहका पात्र

होते हुए भी कर्तव्यको पूर्ण करनेमें एक नहीं अगणित कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं।

विजयसिंह देव—पर कुछ भी कहनेमें तुम संकोच क्यों करते हो? मैंने तुमसे कहा न कि मुझे कुछ भी कहनेकी तुम्हें स्वतंत्रता है।

चण्डपीड—श्रीमान्‌की कृपा और प्रेमसे मैं अनभिज्ञ थोड़े ही हूँ, किन्तु....(फिर चुप हो जाता है।)

विजयसिंह देव—फिर किन्तुपर चुप?....तो तुम्हारी सम्मति महामंत्रीजीसे परामर्श करनेकी नहीं है?

चण्डपीड—ऐसी सम्मति देनेकी अनधिकार चेष्टा मैं नहीं कर सकता, पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उनकी यदुरायके प्रति बड़ी सहानुभूति है!

विजयसिंह देव—(विचारते हुए) और उनमें कलचुरि रक्त भी कहाँ? यह प्रश्न राज-काजसे सम्बन्ध नहीं रखता, हमारे कुलमें किसी प्रकारका कलंक न लग जाय, यहाँ तो यह समस्या उपस्थित हो गई है।

चण्डपीड—(प्रसन्नतासे) ठीक कह रहे हैं, परमभट्टारक।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता]

विजयसिंह देव—फिर क्या किया जाय?

चण्डपीड—(गंभीरतासे विचारते हुए) मुझे सोचनेके लिए कुछ समय दीजिए, महाराज, रंगभूमिमें पधारनेके पूर्व अपनी सम्मति मैं सेवामें उपस्थित कर दूँगा और अभी तो अलंकृत कीजिए विजयादशमीके नृत्यगानको। आज तो सारे राज्यकी नर्तकियाँ महाराजके अभिवादनके लिए उपस्थित हुई हैं।

[दोनोंका धीरे-धीरे प्रस्थान।]

तीसरा दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राज-प्रासादका सभा-भवन

समय—रात्रि

[सभा-भवन पाषाणका बना है। तीनों ओरकी भित्तियोंपर सुन्दर चित्रकारी है। तीनों भित्तियोंमें अनेक द्वार हैं जिनकी चौखटें पाषाणकी और किवाड़ काठके हैं। चौखटों और किवाड़ोंमें खुदाईका काम है। अनेक द्वार खुले हुए हैं जिनसे बाहरके उद्यानका कुछ भाग दिखाई देता है, जो चाँदनीमें चमक रहा है। पाषाणके स्तंभोंपर सभा-भवनकी छत है। स्तंभोंके नीचे कुंभी और ऊपर भरणी है। भरणीपर झरोखे हैं। स्तम्भ, कुंभी, भरणी और झरोखोंके पाषाणोंमें खुदाईका काम है और खुदी हुई बेलोंपर सुवर्णका काम किया गया है। बेलके पुष्प और फल रत्नोंसे जड़े हैं। सभा-भवनके बीचमें सुवर्णकी बने हुए और स्थान स्थानपर हाथी दाँतके कामसे युक्त एवं रत्नोंसे जटित शयन* रखे हैं। इनके गद्दे और तकिये कौशेय वस्त्रसे ढके हैं, जिसके सिरोंपर मोती-झालर लगी है। शयनके दोनों ओर दो बड़ी बड़ी आसंदी तथा इन दोनोंके निकट अनेक छोटी छोटी आसंदियाँ पंक्तिमें रखी हैं। ये भी सुवर्णकी बनी हैं और इनमें रत्न जड़े गये हैं। इनके गद्दे तकिये भी कौशेय वस्त्रसे ढके हैं। यत्र तत्र ऊँची ऊँची सुवर्णकी दीवटोंके रत्न-जटित सुवर्ण-पात्रोंमें सुगन्धियुक्त तेलके दीपक जल रहे हैं। इसी प्रकार सुवर्णकी धूपदानियोंमें धूप जल रहा है, जिसका थोड़ा थोड़ा धूम निकलकर सभा-भवनको सुगन्धित किये हुए है। शयनके निकट एक सुवर्णकी चौकीपर सुवर्णके रत्नजटित सुरा और ताम्बूल-पात्र रखे हैं जिनके निकट ही एक युवती खड़ी है। वेश-भूषामें वाहिकाओंके समान। छोटी आसंदियोंपर सामन्त और कुलपुत्र बैठे हैं। महाप्रतिहारका प्रवेश। महाप्रतिहार लगभग ६० वर्षकी अवस्थाका ऊँचा और साधारणतया मोटा मनुष्य है। सिर और मूँछों तथा दाढ़ीके बाल लम्बे हैं, जो सफेद हो गये हैं। सिरपर वह श्वेत पगड़ी बाँधे है तथा शरीरपर कंचुक (एक

---

* एक प्रकारका सोफा जिसे उस समय 'शयन' कहते थे।

प्रकारका अँगरखा) और अधोवस्त्र पहने हैं। कमरमें सुनहरी कमरपट्टा है, जिसके बाई ओर सुवर्णकी मूठका खड्ग लटक रहा है। वह भी कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ पहने हैं। मस्तकपर केशरका त्रिपुण्ड और पैरोंमें काष्ठकी पादुकाएँ हैं। उसके दाहने हाथमें सुवर्णकी ऊँची छड़ी और बाएँ हाथमें शङ्ख है।

महाप्रतिहार—(शंख बजाकर) जय परम माहेश्वर, परम भट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधिपति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् श्रीविजयसिंह देवकी जय।

[सारे सभासद खड़े हो जाते हैं। सुवर्णकी रत्नजटित शिविकापर विजय-सिंह देवका प्रवेश। शिविकाके दाहिनी ओर चण्डपीड चल रहा है। शिविका ऊपरसे खुली है अर्थात् उसपर छाया नहीं है। उसे आठ शिविका-वाहक उठाये हुए हैं। शिविका-वाहक सूती अधोवस्त्र पहने हैं। उनके उत्तरीय उष्णीषके रूपमें उनके मस्तकोंपर बँधे हैं, अतः उनका ऊपरका श्याम अंग खुला है। शिविका-वाहक सुवर्णके आभूषण भी धारण किये हैं। शिविकाके पीछे पाँचों वाहिकाएँ चल रही हैं। शिविकाके आते ही, सारे सभासद सिर झुका-झुकाकर नमन करते हैं। शिविका शयनके समीप रखी जाती है। विजयसिंह देव शिविकासे उतर, अभिवादनोंका सिर झुका उत्तर दे, शयनपर बैठता है। रिक्त शिविकाको शिविका-वाहक ले जाते हैं। वाहिकाएँ शयनके पीछे खड़ी होती हैं। चण्डपीड बायीं ओरकी बड़ी आसंदीपर बैठता है। सभासद भी अपने अपने स्थानोंपर बैठ जाते हैं। नर्तकियाँ आती हैं। नर्तकियाँ युवतियाँ हैं। वर्ण गौर है और सभी सुन्दर। वेशभूषा नर्तकि-योंकी वाहिकाओंके सदृश ही है, केवल एक अन्तर है—नीचेके वस्त्रमें घेर अधिक है, जो नाचनेके लिए जान पड़ता है। नृत्य आरंभ होता है। विजयसिंहको शयनके निकट खड़ी हुई युवती सुरा पिलाती और तांबूल खिलाती है। 'वाह ! वाह !' की ध्वनि भी गूँजने लगती है। नृत्यके पश्चात् गान होता है।]

गान

शशि कैसे मुसकाये, आली।
मृदु उरमें नभ ज्वार छिपा, यह इतना मधु बरसाये ॥
सुखसागरमें डूब-डूब जब, मेरा मन थक जाये।
लहर-लहरपर सजल तापसे, अपने अंग सुखाये ॥
विधुके धवल हासकी सिहरन, जग कंपित कर जाये।
नलिनीके लोचन-पत्रोंमें, हिम-आँसू भर आये ॥
मनका ताप उठे, शीतलता तनकी शशि बिखराये।
वाष्प ज्वारसे चन्द्रकान्तका उपल हिया गल जाये ॥
सुन्दर तनकी हृदय-शून्यता, जब कलंक कहलाये।
मेरा मन उस इन्दु-शशक-सा भीत भीत हो आये ॥

[गानके पश्चात् इन नर्तकियोंका प्रस्थान। अब आठ नर्तकियाँ और आती हैं। इनकी वेशभूषा भी पहली नर्तकियोंसे मिलती-जुलती है। ये भी पहले पहले नाचती और फिर गाती हैं।]

गान

हँसते जगमें, सजनी, आ झाँकी उर-रजनी।
उमगी-सी लहरें ठिठकीं, मृदु मलय पवन सिहरी।
खिली चन्द्रिका सकुच ओढ़ती मनकी छाँह घनी।
हँसती गिरि-माला लज्जित-सी अलि, निष्कंप खड़ी।
सुमन सेजपर सुरभि लोटती, स्मृतियाँ बाण बनीं।
उन्मन मनने मधु राकामें, कल झंकार सुनी।
आज निशाके उरमें प्रतिध्वनि गूँजी गरल-सनी।

[एकाएक अन्धेरा होता है। कुछ देरमें बन्दी जनोंका प्रभात-वाद्य सुन पड़ता है। अन्धेरेमें ही वाद्य चलता रहता है। धीरे-धीरे प्रकाश फैलने लगता है और फिरसे पहले दृश्यवाला दृश्य दृष्टिगोचर होता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राजप्रासादके बाहरका खुला मैदान

समय—प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है, जैसा पहले दृश्यमें था। दृश्यके बायीं ओर विजयसिंहदेव सिंहासनपर बैठा है। विजयसिंहदेवको दाहिनी ओरकी आसंदियोंपर स्त्रियाँ हैं। इन्हींमें रेवासुन्दरी और विन्ध्यबाला हैं। विजयसिंहके बायीं ओरकी आसंदियोंमें प्रथम तीनपर सुरभी पाठक, चण्डपीड और देवदत्त हैं; शेषपर सामन्त और कुल-पुत्र। दृश्यके दाहिनी ओर जनसमुदाय है। दृश्यके पीछेकी ओर सेना है। रंगभूमिमें यदुराय खड़ा है। यदुरायका मुख विजयसिंह देवकी ओर है। विजयसिंह देव बैठा बैठा ही ऊँचे स्वरमें बोल रहा है।]

विजयसिंह देव—पुरस्करणीय नहीं, यदुराय, तेरी कृतिया, दण्डनीय हैं।

[सारे स्थलपर एक अद्भुत प्रकारका आश्चर्यमय सन्नाटा-सा छा जाता है। किसीके नेत्र अधिक विशाल हो-गये-से दिखते हैं, किसीके नथने फूल गये-से जान पड़ते हैं, किसीका मुख खुल जाता है, किसीकी अंगुलियाँ फलकर हाथ ऊपर उठ जाते हैं। सुरभी पाठक और रेवा सुन्दरीकी मुद्राओंसे तो भास होता है, मानों उनपर वज्रपात हुआ हो। चण्डपीड अपने हर्षको छिपानेका प्रयत्न करनेपर भी छिपा नहीं पाता और यह हर्ष उसकी मुद्रासे झलकने लगता है। विन्ध्यबाला जब चण्डपीडकी ओर देखती है और उसकी मुद्रासे उसका हर्ष जान लेती है; तब विन्ध्यबालाकी दृष्टि घृणासे भर जाती है और ओठ घृणासे सिकुड़-से जाते हैं। यदुरायके मुख और सारे शरीरसे जान पड़ता है मानों उसपर आश्चर्यका पहाड़ गिर पड़ा हो। यदुरायको छोड़ किसीके मुखसे कोई शब्द नहीं निकलता और यदुरायके मुँहसे भी केवल एक शब्द—]

यदुराय—दण्डनीय ?

विजयसिंह देव—हाँ, दण्डनीय। हमारा भारतवर्ष संसारका सर्वश्रेष्ठ देश है और भारतीय समाज विश्वका सर्वोत्तम समाज।

इसका कारण है इस देश और समाजका धर्मप्राण होना। हमारा आर्य-धर्म चार वर्णों और चार आश्रमोंकी नींवपर स्थित है। बीच-बीचमें जब कभी कुछ विधर्मी उत्पन्न हो इस नींवको खोदनेका प्रयत्न करते हैं तब धर्मकी पुनः संस्थापनाके लिए स्वयं भगवान् अवतीर्ण होते हैं। इस नींवको खोदनेके अबतकके प्रयत्नोंमें अन्तिम आयोजन गौतम बुद्धका था। उनका कुठाराघात था मुख्यतः वर्ण-व्यवस्थापर, वे चाहते थे चारों वर्णोंके भेद-भावका नाशकर सबको एकमय कर देना। इसीलिए बौद्धमतके खण्डनके निमित्त भगवानको शंकराचार्यके रूपमें जन्म लेना पड़ा। सम्राट् हर्षवर्धन-ने पुनः बौद्धमतको उत्तेजना देनेका प्रयत्न किया और यही कारण है कि हर्षके पश्चात् वर्द्धन-वंश ही निर्वंश हो गया। हमारे कलचुरि वंशने भी यदि बौद्धधर्मका त्याग कर शैव मत न ग्रहण किया होता, तो हमारे कुलकी भी यही दशा होती। चारों वर्णोंमें ब्राह्मण परब्रह्म परमात्माके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, क्षत्रिय भगवान्‌की भुजाओंसे, वैश्य उदरसे और शूद्र चरणोंसे। गोंड़ हैं शूद्र—उनका धर्म है तीनों वर्णोंकी सेवा। यदि वे क्षत्रियोंके युद्धधर्मको ग्रहण करते हैं तो यह अधर्म होता है। इसमें समाज और देशको ही हानि नहीं पहुँचती वरन् वे स्वयं भी नरकमें जानेकी तैयारी करते हैं। हमारे राज्यमें न जाने किसने गोंड़ोंको भी सेनामें भरती करना आरंभ कर दिया। कदाचित् यह तब हुआ जब हमारे वंशज बौद्ध थे। हमारे कुलका उत्कर्ष पूज्यपाद गांगेयदेव और पूज्यपाद कर्णदेवके समय हुआ। वे थे शैव, परन्तु जब यह वंश बौद्धधर्मावलंबी था उस समय गोंड़ोंको सेनामें लेनेकी जो परिपाटी चल पड़ी थी वह गांगेयदेव और कर्णदेवके समय भी न रोकी गई। इन सम्राटोंके अन्य अनेक सद्गुणोंके

कारण गोंड़ोंके सैनिक होते हुए भी, इसमें सन्देह नहीं, कि हमारे कुलका उत्थान हुआ, परंतु यह अधर्म न होता तो जितना उत्कर्ष कलचुरि वंशका इनके समय हुआ उससे भी अधिक होता और आज जो कलचुरि वंशका पुराना उत्कर्ष नहीं दिखता उसका प्रधान कारण यही अधर्म है। तेरा कार्य, यदुराय, यद्यपि दण्डनीय ही है तथापि गोंड़ त्रिपुरीकी सेनामें भरती होने लगे थे इसी कारण तू भी ऐसे अधर्ममें प्रवृत्त हुआ। इसलिए तेरा अपराध क्षमा किया जा सकता है यदि तू भविष्यमें इस अधर्मको त्याग ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य तीनोंमेंसे किसी भी वर्णकी सेवा-वृत्ति स्वीकार कर ले।

यदुराय—(जिसकी दृष्टिमें विजयसिंह देवका भाषण सुनते-सुनते ही अत्यधिक क्रूरता आ गई है। अत्यन्त कठोर स्वरमें) सेवावृत्ति.... सेवावृत्ति ही मैंने स्वीकार की है, अन्य कोई वृत्ति नहीं। पर यह सेवा है मातृभूमिकी। मैंने भी कुछ पढ़ा लिखा है, धर्मकी विवेचना भी सुनी है। जन्मके अनुसार वर्ण नहीं, मैं कर्मके अनुसार वर्ण मानता हूँ। राठौरोंके क्षत्रिय कुलमें जन्म लेनेवाले जयचन्द्रको जिसने विदेशियोंको जन्मभूमिको पद-दलित करनेके लिए निमंत्रित किया, मैं क्षत्रिय नहीं मानता। इस समयके गोरके विदेशियोंके आक्रमणोंने ही मुझे सेनामें भरती होनेकी प्रेरणा दी है। इस समय मातृभूमिकी रक्षाके लिए प्रत्येक व्यक्तिका धर्म........हर मनुष्यका कर्म........

चण्डपीड—(खड़े होकर अत्यधिक क्रोधभरे स्वरमें) रे गोंड़, तूने तो उद्दंडताकी पराकाष्ठा कर डाली ! किस प्रकार तू देख रहा है, परम भट्टारककी ओर ? कैसे स्वरमें बोल रहा है रे ?....... उपदेश....उपदेश दे रहा है उन्हें जिनमें स्वयं भगवान् निवास

करते हैं ? कहता है तूने धर्मकी विवेचना सुनी है। जानता है गीतामें भगवानने कहा है मनुष्योंमें राजा मेरा रूप है। उन्हीं-के सम्मुख ऐसी उद्दण्डता! तेरी तो आँखें निकलवा ली जानी चाहिए, तेरी तो जीभ कटवा डाली जानी चाहिए, निकृष्ट गोंड़ !.... पामर....गोंड़....

यदुराय—(बीच हीमें अत्यधिक क्रोधसे) निकृष्ट गोंड़ ! .... पामर गोंड़....

विजयसिंह देव—(चण्डपीडसे) बैठो, शान्त हो, महाबलाधिकृत, यह समय और यह स्थान क्रोधका नहीं, विवेकका है।

[चण्डपीड बैठ जाता है।]

सुरभी पाठक—महाराज....

विजयसिंह देव—यह मंत्रणा-गृह नहीं है, महामंत्रीजी, आप भी चुप रहिए।

रेवासुन्दरी—(झिझकते हुए) पिताजी....

विजयसिंह देव—चुप, बेटी, राजकाजमें हस्तक्षेप करनेका स्त्रियोंको कोई अधिकार नहीं है। (जल्दीसे यदुरायको) तो तुझे जो तेरे लिए अधर्म है, उसे छोड़ ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्योंकी सेवा-वृत्ति स्वीकार नहीं है ?

यदुराय—(अत्यन्त दृढ़तासे) मैं एक ही धर्म जानता हूँ, एक ही सेवा, और वह है उस कठिन कालमें मातृभूमिकी रक्षा।

विजयसिंह देव—तब तुझे इस राज्यसे निष्कासनका दण्ड दिया जाता है।

[विजयसिंह देव खड़ा होता है। यदुराय बिना किसी प्रकारका अभिवादन इत्यादि किये शीघ्रतासे रंगभूमि छोड़कर जाता है। इस शीघ्रतामें भी उसका एक-एक कदम सम्मान तथा दृढ़तासे भरा हुआ है। सब लोग खड़े होते हैं।

कितनी निराशा है सुरभी पाठक, रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाके खड़े होनेमें और कितनी प्रसन्नता है चण्डपीडके उठनेमें !]

जन समुदायके कुछ व्यक्ति—परममाहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति त्रिकलिंगाधिपति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् विजयसिंह देवकी जय।

[परन्तु कलके जयघोषमें जो उत्साह, जो जोश था उसका लवलेश भी इस जयघोषमें नहीं है। जान पड़ता है मानों यह जयघोष किसी यंत्रद्वारा उच्चरित हुआ हो।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—रेवासुन्दरीके कक्षकी दालान

समय—प्रातःकाल

[दालान दूसरे दृश्यके समान ही है। भित्तिका रंग भर भिन्न है। रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाका प्रवेश। रेवासुन्दरीके मुखपर अत्यधिक उत्तेजना और चंचलताके भाव दृष्टिगोचर होते हैं। विन्ध्यबाला शान्त है।]

विन्ध्यबाला—तो यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है, राजकुमारी ?

रेवासुन्दरी—सर्वथा अन्तिम, सखि। बाल्यावस्थासे ही तुम मेरी पथ-प्रदर्शिका रही हो। अपने निश्चयोंपर अटल रहना तुम्हींने मुझे सिखाया है, विन्ध्यबाला।

विन्ध्यबाला—परन्तु यह निश्चय...

रेवासुन्दरी—(बीच हीमें) क्यों, क्या तुम्हारा मत है कि मेरा निश्चय उचित नहीं है ?

विन्ध्यबाला—नहीं, मैं यह नहीं कहती, किन्तु....

रेवासुन्दरी—(फिर बीचहीमें) यदि तुम मेरा निश्चय अनुचित नहीं मानतीं तो 'किन्तु' 'परन्तु' का स्थान ही नहीं है। सखि, भारतीय सभ्यतामें वरका चुनाव सदा स्त्रियोंके अधीन रहा है। स्वयंवर इसी प्रथाके परिणामस्वरूप हैं। यह क्या तुम्हें भी स्मरण दिलानेकी आवश्यकता है?

विन्ध्यबाला—तुम जानती हो कि मैं इस प्रथाकी समर्थक हूँ, पर....

रेवासुन्दरी—(फिर बीच हीमें) तब 'पर' कैसा? वे क्षत्रिय नहीं हैं गोंड़ हैं, क्या यह इस 'पर' का कारण है? परंतु तुम तो इस प्रकारका भेद-भाव मानती ही नहीं। सृष्टिकी सारी चेतन वस्तुएँ ही नहीं पर जड़ पदार्थ तक एक ही तत्त्व हैं यह मानती हो।

विन्ध्यबाला—नहीं भेदभावके कारण मैंने 'पर' नहीं कहा था।

रेवासुन्दरी—तब?

विन्ध्यबाला—तुम सुनो तब तो कहूँ। आज तो तुम इतनी उत्तेजित हो रही हो कि मेरी बात भी सुननेको प्रस्तुत नहीं।

रेवासुन्दरी—उत्तेजित....उत्तेजित सखि, ऐसे अन्याय, महान् अन्याय, घोर अन्यायपर भी यदि मैं उत्तेजित न होऊँ तो मैं क्षत्राणी नहीं। ऐसे योद्धा, ऐसे वीरको ऐसा पुरस्कार!

विन्ध्यबाला—(मुसकरा कर) उस योद्धा, उस वीरके प्रति तुम्हारे भावोंको मैं कल ही ताड़ गई थी, पर कल तुम्हें कुछ कहना मैंने उचित नहीं........

रेवासुन्दरी—(फिर बीचहीमें) नहीं सखि, कल....कल मैंने ऐसा कोई निर्णय नहीं किया था। यदि ऐसा होता तो कल पिताजीसे मैं उन्हें कुंकुम लगानेका प्रस्ताव कैसे करती? कलकी

उनकी कृतियोंको देख ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो उनके प्रति आकृष्ट न हो, स्वयं पिताजी कहते थे कि उन्होंने जीवनमें उनके समान कोई योद्धा नहीं देखा, पर कल उनके प्रति मेरा उसी प्रकारका साधारण खिंचाव हुआ था, जैसा किसी वीरके प्रति होता है। आज जब उनके साथ, उनके ऐसे देशभक्त होते हुए, त्रिपुरी राज्यके सबसे महान् वीर घोषित होनेपर भी, ऐसा घोर अन्याय किया गया तब मैंने निर्णय किया कि इस अन्यायका मैं परिमार्जन करूँगी। यदि विवाह करूँगी तो उन्हींके साथ, नहीं तो आजन्म कुमारी रहूँगी। विन्ध्यबाला, निश्चय करनेकी मुझमें शक्ति है, उस निश्चयपर अटल रहनेका भी बल है। परन्तु निश्चयमें सफलता मुझे तभी मिल सकती है, जब जो अब तकके जीवनमें सदा मेरी पथ-प्रदर्शिका रही है, वही भविष्यमें भी रहे। जब तुम मेरे निर्णयको अनुचित नहीं मानतीं, जब तुम क्षत्रिय और गोंड़में भेद नहीं समझतीं, तब क्या मेरे निश्चयकी सफलतामें सहायक न होगी? (घुटने टेककर विन्ध्यबालाकी ओर देखने लगती है। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आते हैं।)

विन्ध्यबाला—(रेवासुन्दरीको उठाते हुए) उठो, राजकुमारी, उठो, यह क्या कर रही हो? तुम जानती हो मैंने हर उचित बातमें सदा ही तुम्हें सहायता देनेका प्रयत्न किया है।

रेवासुन्दरी—(उठते हुए, भर्रायेसे स्वरमें) सहायता क्या, मैं जसी भी हूँ तुम्हारी बनाई हुई हूँ। माता तो मेरी बालावस्थामें चल दीं। उनका तो मुझे स्मरण तक नहीं। तुम्हींको मैंने माँ, बहन, सखि सब कुछ माना है।

विन्ध्यबाला—गढ़ते तो सबको भगवान हैं, पर निमित्त मात्र कोई-

भी हो जाता है । तुम्हें इतनी शुद्ध अन्तःकरणवाली, ऐसी साहसी, इतनी दृढ़प्रतिज्ञ ईश्वरने बनाया है। तुम्हारा निश्चय न मैं अनुचित मानती और न क्षात्रिय तथा गोंड़में कोई अन्तर ही। यदुराय अद्वितीय वीर है, इसे भी मैं मानती हूँ। मातृभूमिकी रक्षाके लिए उसका संकल्प भी अत्यन्त स्तुत्य है । उसके साथ घोर अन्याय हुआ है और इस अन्यायमें दुष्ट चण्डपीडका प्रधान हाथ है। उसने कलचुरियोंके कुलीन कुलकी भावना जागृत कर परमभट्टारकको भड़काया है; इसमें भी मुझे सन्देह नहीं, पर तुम्हारे निर्णयको कार्यरूपमें परिणत करनेमें तुम्हारे कुलीन कुलमें ही तुम्हें जो संघर्ष करना पड़ेगा इसकी कल्पना भी कर ली है न ?

रेवासुन्दरी—रुक्मिणी देवीको भगवान कृष्णके, सुभद्रा देवीको वीरवर अर्जुनके और हालहीमें संयोगिता देवीको महाराज पृथ्वी-राजके प्राप्त करनेमें इसी प्रकारका संघर्ष तो करना पड़ा था ?

विन्ध्यबाला—मार्ग कितना दुस्तर है, यह जानती ही हो।

रेवासुन्दरी—तुम सदैव ही कहा करती हो कि ध्येय जितना ऊँचा होता है उतना ही कठिन उसके प्राप्त करनेका पथ भी होता है।

विन्ध्यबाला—(कुछ रुककर सोचते हुए) मैं सदाके समान तुम्हारी सहायका रहूँगी।

[रेवासुन्दरी आँसू बहाती हुई विन्ध्यबालासे लिपट जाती है। विन्ध्यबाला उसकी पीठपर हाथ फेरने लगती है।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राज-प्रासादका सभा-भवन

समय—रात्रि

[दृश्य वैसा ही है जैसा पहले अंकका तीसरा दृश्य था । 'शयन' पर विजयसिंह बैठा हुआ है । पासकी आसंदीपर चण्डपीड है । सामन्त और कुल-पुत्र भी उपस्थित हैं । नर्तकियोंका नृत्य हो रहा है । कुछ देर पश्चात् सुरभी पाठकका शीघ्रतासे प्रवेश । उसके हाथमें एक कागज है ।]

सुरभी पाठक—(कड़ककर) बन्द करो यह नृत्य और हट जाओ नर्तकियो ! जो कुछ मुझे ज्ञात हुआ है यदि वह सत्य है तो महा-कोशलके साम्राज्यके लिए, इस त्रिपुरी नगरके लिए, आजका दिवस हर्षका नहीं, दुःखका है, सन्तापका है । सामन्त, कुलपुत्र, सब यहाँसे प्रस्थान करें और वाहिकाएँ भी चली जायँ; मुझे एकान्तमें परम भट्टारकसे कुछ निवेदन करना है ।

[सुरभी पाठकके शब्द सारे सभा-भवनमें गूँज जाते हैं । तत्काल नृत्य बन्द हो जाता है । राजा, सेनापति और सुरभी पाठकको छोड़ शेष सब चले जाते हैं ।]

सुरभी पाठक—(शयनके निकट जा हाथका कागज़ आगे बढ़ाकर) राज-मुद्रासे युक्त यह पत्र शहाबुद्दीन गोरीके सूबेदार कुतुबुद्दीन ऐबकके पास परमभट्टारककी आज्ञासे जा रहा था ?

विजयसिंह देव—हाँ, महामंत्रीजी ।

सुरभी पाठक—और उसमें सान्धि-विग्रहिक महामात्यकी सम्मतिकी कोई आवश्यकता न थी ?

विजयसिंह देव—मुझे आपकी सम्मति ज्ञात थी।

सुरभी पाठक—उस सम्मतिको जानते हुए भी महाराजने इस प्रकारका उत्तर देना उचित समझा?

विजयसिंह देव—हाँ, बहुत कुछ सोचने विचारने और परिस्थितिका ध्यानपूर्वक मनन करनेके पश्चात् यही ठीक प्रतीत हुआ।

सुरभी पाठक—यह श्रीमान्‌का अन्तिम निर्णय है?

विजयसिंह देव—यदि यह न होता तो मैंने महामुद्राधिकृतको राज-मुद्रा लगाकर यह पत्र भेजनेकी आज्ञा क्यों दी होती?

सुरभी पाठक—और इस निर्णयको परमभट्टारक राज-धर्म्मके अनुसार उचित समझते हैं?

विजयसिंह देव—धर्मकी व्याख्या तो सदा बड़ी कठिन रहती है, पर मुझे तो इसमें अधर्म कहीं दिखाई नहीं देता। यह तो शक्तिशाली मुसलमानोंसे इस समय एक प्रकारकी सन्धि कर लेनेका प्रस्ताव है, मित्रता स्थापित करनेका आयोजन है।

सुरभी पाठक—मित्रता बराबरीवालोंमें होती है, श्रीमान्। जो अपनेको सिंह और हमें बकरा समझते हैं उनसे कैसी मित्रता? परम भट्टारक तो उनके माण्डलिक बनकर सन्धि करने जा रहे हैं। यह कैसा बन्धुत्व?

विजयसिंह देव—शक्तिशालियोंको चक्रवर्ती मान व्यर्थके रक्त-पातको बचानेके लिए उनके माण्डलिक बन सन्धि कर लेना, और इस प्रकार मित्रता स्थापित करना, भारतकी प्राचीन नीति रही है, जो धर्म-युक्त मानी जाती थी। शक्तिशालीके साथ कितने नरेश युद्ध करते थे?

सुरभी पाठक—परन्तु विदेशियोंको चक्रवर्ती मानकर नहीं। भारतमें चक्रवर्ती प्रथा केवल धर्म और सभ्यताकी एकता स्थापित

रखनेके लिए चली थी, पीछेसे उसका चाहे कितना ही विकृतरूप क्यों न हो गया हो। अपने समयके श्रेष्ठतम नरेशको अन्य नरेश चक्रवर्ती मान उसे अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करनेकी स्वीकृति दे देते थे और इस प्रकार हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्त एक धर्म और एक सभ्यताकी ध्वजा फहराती रहती थी। मैं मानता हूँ उस समय विशेष रक्त-पात नहीं होता था। श्रीरामचन्द्रके अश्वमेधमें बहुत थोड़े युद्ध हुए थे। पाण्डवोंको अपने राजसूयमें केवल मगधके जरा-सन्धसे युद्ध करना पड़ा था। यह भी मानता हूँ कि चक्रवर्ती अपने माण्डलिकोंको मित्र मानते थे, उनकी स्वतंत्रताका कभी अपहरण न होता था। जरासन्धके पश्चात् उसके पुत्र सहदेवको ही मगधका सिंहासन मिला था। क्या श्रीमान् शहाबुद्दीनके माण्डलिक होकर कुतुबुद्दीनसे यह आशा करते हैं? महाराज, कान्यकुब्जपति जयचन्दने भी यही आशा की थी।

विजयसिंह देव—कान्यकुब्ज और महाकोशलमें अंतर है। वह सैकड़ों वर्षोंतक भारतवर्षकी राजधानी रह चुका था। मुसलमानोंको उसे छोड़ देना कठिन था। फिर एक ओर अनेक निर्दोषोंका व्यर्थ ही रक्त बहाना है, अनेकोंको क्रीत-दास बनवाना है, मूर्तियोंको तुड़वाना और मन्दिरोंको भ्रष्ट करवाना है, धर्मके नामपर घोर अधर्म करना है, और दूसरी ओर यह सन्धि है।

सुरभी पाठक—कैसा अधर्म परमभट्टारक? कुछके रक्त-पात होते और कुछके क्रीत-दास बननेका भय मनुष्यको उसके सच्चे कर्तव्यसे च्युत नहीं कर सकता। स्वतंत्रता और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा होते हुए एक चिउँटीके प्राण न जायँ तो बड़ी उत्तम बात है, पर स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा बिना युद्धके यदि सम्भव नहीं है, तो

अक्षोहणियोंकी भी कोई गणना नहीं। पराये राज्यपर आक्रमण कर व्यर्थके रक्त-पातको मैं वीरता नहीं, नीचता मानता हूँ, पर स्वातंत्र्यकी और सच्चे सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए अहिंसाके द्वारा जब तक कोई उपाय संसारमें नहीं निकल आता, तब तक हिंसाके भयसे देशको परतंत्र और देशनिवासियोंको दास नहीं बनाया जा सकता। मूर्तियों और मन्दिरोंसे आपका क्या अभिप्राय है, महाराज? यह तो वही बात है जो सिन्धमें हुई थी। मुसलमानोंके सिन्ध-विजयके पश्चात् कान्यकुब्ज-नरेशोंके बलवान् होनेपर भी उन्होंने इस लिए सिन्धपर आक्रमण नहीं किया कि मुसलमान डर बताते थे कि सिन्धपर आक्रमण होते ही वे मुलतानकी प्रसिद्ध मार्तण्ड-मूर्तिको तोड़ डालेंगे। श्रीमान्, मैं वैसा ब्राह्मण नहीं हूँ कि कुछ मन्दिरोंके मस्जिदें बन जानेके भय, और कुछ मूर्तियोंके टूटनेके डरसे देशकी स्वतंत्रताको खो दूँ। देश स्वतंत्र रहा तो अगणित मन्दिरों और मूर्तियोंकी स्थापना हो जायगी। (दाहिनी ओरकी बड़ी आसंदीपर बैठ विजयसिंह देवकी ओर थोड़े झुककर) देखिए, परमभट्टारक, अपने इतिहासकी ओर देखिए। अपने वंश और पूर्वजोंका स्मरण....

विजयसिंह देव—उससे क्या लाभ होगा, महामंत्रीजी?

सुरभी पाठक—उससे आप अपना धर्म और कर्तव्य स्थिर कर सकेंगे। इतिहासका यही तो महत्त्व है। महाराज, आपका कलचुरि या हैहय राज-कुल भारतका अत्यंत प्राचीन क्षत्रिय वंश है। हैहय वंश ऐसा-वैसा वंश नहीं, महा पराक्रमी और प्रतापी वंश था। सहस्रार्जुन, जिसने लंकापति रावणको हराया था, इसी वंशमें हुआ था। पुरानी बात जाने दीजिए। अभी आपके केवल सातवें पूर्वज, जो इसी त्रिपुरीमें राज्य करते थे, परममाहेश्वर, परमभट्टारक,

परमेश्वर गांगेयदेव विक्रमादित्यका स्मरण कीजिए। सम्राट् हर्षवर्धनके पश्चात् कान्यकुब्ज भारतके चक्रवर्ती राजाओंकी राजधानी थी। परमेश्वर गांगेयदेव विक्रमादित्यने कान्यकुब्ज-देशपर विजयकर आपके महाकोशल देश और उसकी राजधानी त्रिपुरीको भारतकी राजधानी बना दिया था। गज़नीके महमूदने यद्यपि महोबेके चन्देल नृपको जीत आपके पड़ोसी महादुर्ग कालिंजरको ले लिया था*, पर आपके राज्यपर उसे आँख उठानेका भी साहस नहीं हुआ। जब उसके गज़नी लौट जानेपर उसके सूबेदार अहमदने हिन्दुओंके सर्वश्रेष्ठ तीर्थ-स्थल काशीपर आक्रमण किया तब परमेश्वर गांगेयदेव विक्रमादित्यने ही काशीको बचा हिन्दू धर्मकी रक्षा की थी। इतना ही नहीं श्रीमान्, उन्होंने सारे मध्येदेशसे विदेशियोंको निकाल बाहर किया था। इसीलिए तो उन्हें विक्रमादित्यकी उपाधि मिली थी। उनके पुत्र परममाहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर त्रिकलिंगाधिपति कर्णदेवका स्मरण कीजिए। उन्होंने त्रिकलिंगको जीता, मगधमें चम्पारण तक विजय प्राप्त की, मालवा विजय किया, और चोल, पांड्य, मुरल, अंग और बंगपर अपना ध्वज फहराया। उनकी सभाओंमें उन्हें एक सौ छत्तीस माण्डलिक नमन करते थे। उनके पुत्र परमभट्टारक यशःकर्ण, उनके पुत्र परमभट्टारक गयकर्ण, उनके पुत्र परमभट्टारक नरसिंह वर्मा, उनके पुत्र और आपके पिता परमभट्टारक जयसिंह देव सभी समानरूपसे पराक्रमी और चक्रवर्ती राजा रहे। अब उन्हींके वंशज कलचुरि-नरेश विजयसिंह देव कुतुबुद्दीन ऐबकके पास शहाबुद्दीनके माण्डलिक होनेकी स्वीकृति भेज रहे हैं! वृद्धावस्थामें ब्राह्मण सुरभी पाठक यह क्या सुन रहा है, परमभट्टारक?

*ये घटनायें त्रिकूटक सवंत् ७७५ और ७८५ की हैं। त्रिकूटक संवत्सर कलचुरियोंने चलाया था।

विजयसिंह देव—(चण्डपीडसे) महासेनापति, तुम तो सर्वथा चुप हो, तुम भी तो कुछ कहो।

सुरभी पाठक—अच्छा तो यह सब महासेनापतिकी सम्मतिसे हो रहा है?

चण्डपीड—इसमें बुरी बात तो कुछ नहीं है, महामंत्रीजी। महासेनापतिको भी अपनी सम्मति देनेका अधिकार है। इतना ही अन्तर है कि आप केवल भूतको देखकर अपनी सम्मति देते हैं और मैं वर्तमानको देखकर।

सुरभी पाठक—सुनूँ तो तुम्हारी क्या सम्मति है?

चण्डपीड—यही कि केवल पीछे देखनेसे काम नहीं चलता, जो इस समय हो रहा है उसे भी देखना पड़ता है। उत्तर-पश्चिमके विदेशियोंकी यह आँधी ऐसी नहीं है जिसका सामना किया जाय। इसकी ओर पीठ ही देना होगा। जिस जिसने इसका सामना किया उसने क्या फल पाया? दिल्लीपति पृथ्वीराज और कान्यकुब्जपति जयचन्दकी क्या दशा हुई? दिल्लीके दलनका हृदयको हिला देनेवाला हाल, अजमेरपर किये गये अत्याचारोंका अत्यधिक आघात पहुँचानेवाला आयोजन, कान्यकुब्ज और काशीके कष्टोंकी कँपा देनेवाली कथा, और अपने पड़ोसी कालिंजरका शोचनीय अधःपतन क्या आप भूल गये? उसी पथसे ही चलना क्या हमें उचित है? यह तो आपने कह दिया कि आप स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए रक्त-पात, लोगोंके क्रीत-दास बनाये जाने और मन्दिरों एवं मूर्तियोंके टूटनेकी चिन्ता नहीं करते, पर इतनेपर भी स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा कहाँ होती है? दूरकी बात जाने दीजिए। कालिंजर हमारे निकट है। वह अभी जीता गया है। वहाँ क्या हुआ, देखिए। वहाँके दुर्गका पानी सूख जाने और चारों ओरसे

शत्रु-सेनासे घिरे रहनेसे सहस्रों वीरोंने प्यासले तड़प तड़पकर अपने प्राण दे दिये। पचास सहस्र नर-नारी और बालक दास बनाये गये। मन्दिर मस्जिदोंमें परिणत हुए। मूर्तियाँ टूटीं। अन्तमें महोबाके अधिपति, सारे बुन्देलखण्डमें प्रसिद्ध, परमभट्टारक परमालदेवको भागकर जल-समाधि लेनी पड़ी। इतनेपर भी महोबाकी स्वतंत्रताकी रक्षा न हो सकी। उसी प्रकारकी घटनाएँ क्या आप चाहते हैं कि आपके महामंत्री और मेरे महासेनापति रहते हुए महाकोशलके साम्राज्यमें भी हों?

सुरभी पाठक—(घृणासे हँसकर) यह महाकोशलके महासेनापति, यह त्रिपुरीके महाबलाधिकृत, बोल रहे हैं! (चण्डपीडके शरीरकी ओर सङ्केतकर) इस शरीरमें क्षत्रिय रक्तका प्रवाह ही है न? कलचुरि-रक्त ही बह रहा है न? (विजयसिंह देवसे) महाराज, मैं क्षत्रिय नहीं हूँ, मेरे शरीरमें कलचुरि-रक्त भी नहीं है, पर, श्रीमान्, ब्राह्मणोंने भी भयंकरसे भयंकर युद्ध किये हैं। सिन्धके अधीश्वर दाहर और पाञ्चालके प्रभु आनन्दपाल दोनों ब्राह्मण वंशके थे। दाहरने मुहम्मद कासिम और आनन्दपालने महमूदसे महान् युद्ध किया था।

चण्डपीड—और उसका फल क्या निकला, महामंत्रीजी? दोनों ही हारे और युद्धमें मारे गये। यही ब्राह्मणोंकी वीरता है!

सुरभी पाठक—दोनों ब्राह्मण कायर थे, इसलिए हारे, सेनापति, यह बात नहीं है। इन पराजयोंके दूसरे कारण हैं। बिना मनन किये वे समझमें नहीं आ सकते। दोनों राजओंकी सेनाने देशके लिए नहीं, पर राजाके लिए युद्ध किया था, और जैसे ही दोनों राजाओंके हाथी बिगड़कर युद्धक्षेत्रसे भागे, वैसे ही सेनाके पैर उखड़ गये। फिर प्रजाका उन युद्धोंमें कोई हाथ नहीं था। एक बात और थी। मुह-

म्मद कासिम और महमूदके सदृश इन सेनाओंका कोई कुशल कर्ण- धार भी नहीं था।

चण्डपीड—और पृथ्वीराज, जयचन्द तथा परमालदेवकी हार क्यों हुई ?

सुरभी पाठक—अन्तिम दो कारणोंसे—प्रजाका युद्धमें कोई हाथ न रहना और योग्य सेनापतियोंका अभाव; यहाँ एक कारण और बढ़ गया—आपसकी फूट। क्या तुम समझते हो कि पृथ्वीराज और परमालदेवके आपसी युद्ध न होते, साथ ही जयचन्द और पृथ्वीराजकी पारस्परिक शत्रुता न होती तो शहाबुद्दीन दिल्ली जीत सकता था ?

चण्डपीड—अमुक अमुक स्थिति न होती तो यह होता, यह तो कल्पनाकी बात हुई; प्रत्यक्षमें क्या हुआ सो देखिए।

सुरभी पाठक—जो कुछ अन्य स्थानोंमें हुआ, वही यहाँ होगा, यह तो मैं नहीं मानता। (विजयसिंह देवसे) महाराज, चण्डपीड तो अभी कुछ वर्षोंसे महाकोशलके महासेनापति पदपर आसीन हुए हैं। इनके पिताके पश्चात् मेरी ही सम्मतिसे आपने इन्हें यह पद दिया है। इनके पूर्व, इनके पिता और मैं, दोनों मिलकर महामंत्री और महा- सेनापतिका कार्य करते थे। आपकी प्रजामें महाकोशलके प्रति अनुराग और उसके लिए बलिदानके भावोंको हम दोनोंने भरा है। आपके पास वेतन पानेवाली बहुत बड़ी सेना नहीं है, गोंड़ोंको सेनासे अलग करके भी बुद्धिमानीका काम नहीं हुआ, पर आज इतना वृद्ध होनेपर भी मैं आपकी प्रजाके सारे सवर्ण आर्यों और गोंड़ोंको भटोंका कार्य करनेके लिए एकत्र कर सकता हूँ। युद्धका शंख फुँकते ही और राजस्थानीयों, भुक्तपतियों, विषय-पतियों, अक्षपटलिकोंके पास सूचना जाते ही प्रत्येक जन-पद, भुक्त, विषय और ग्रामसे सैकड़ों और सहस्रोंकी संख्यामें भट एकत्रित हो सकते हैं, जो अपनी मातृभूमिके

लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए प्रस्तुत होंगे। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि परमभट्टारकको इस स्वातंत्र्य-रक्षाके महान् यज्ञमे अवश्य सफलता मिलेगी। हाँ, एक बात अवश्य है। उस सेनाका संचालन जिसे मैंने ही महासेनापति बनवाया था—उसकी बातोंसे स्पष्ट हो गया कि—वह नहीं कर सकता। इस सेनाका संचालन महाकोशलमें केवल एक व्यक्ति कर सकता है और वह वही यहाँका मूलनिवासी गोंड़ यदुराय है, जिसे श्रीमान्‌ने निर्वासित कर दिया है। उसका पता लगवाकर उसे बुलवाना होगा।

विजयसिंह देव—(क्रोधसे) महामंत्रीजी, अब तक आपकी बातोंको मैं बड़ी शान्तिसे सुनता रहा। आप मेरे पितामहके सामनेसे महामंत्री हैं, आपने मुझे गोदमें खिलाया है, शिक्षा दी है, इसलिए मैंने आपकी असह्य बातोंको भी सहन किया। आज आपका भरी सभामें आकर सभाको इस प्रकार भंग कर देना उद्दंडताकी चरम सीमा थी, पर फिर भी मैंने आपसे कुछ नहीं कहा, किन्तु अब जो कुछ आप कहेंगे उसे सुनना मेरी सहन-शक्तिके बाहर है। मेरे द्वारा निर्वासित किये हुए उस दुष्टके प्रति आपकी इस प्रकारकी सहानुभूति ! एक निर्वासित व्यक्तिको महा-बलाधिकृत बनानेका प्रस्ताव ! वह अकुलीन गोंड़ यदुराय इस कुलीन क्षत्रिय-राज्यकी रक्षा करेगा ! वह पतित हमारी महाकोशलकी उन्नत सेनाका संचालन करेगा ! एक मेरे ही कुलका नहीं, क्षत्रियोंके छत्तीसों कुलोंका यह अपमान है।

सुरभी पाठक—(धीरे धीरे) परमभट्टारकने मेरी उद्दण्डताओंको जिस प्रकार सहन किया, उसके लिए यह किंकर श्रीमान्‌का अनुगृहीत है, परन्तु मेरे किसी भी कार्यसे राज्य अथवा राज्यवंशकी मान-मर्यादामें यदि कोई भी क्षति पहुँची हो तो मैं दोषी हूँ। रहा राज्यकी रक्षाका प्रश्न, सो राज्यकी रक्षा उसे विदेशियोंके हाथ बेच देनेवाले,

अपनेको कुलीन कहनेवाले (चण्डपीडकी ओर संकेत कर) ये क्षत्रिय अब नहीं कर सकते। जिस चण्डपीडकी सम्मतिसे परमभट्टारक शहाबुद्दीन गोरीके माण्डलिक बनने जा रहे हैं वह राज्यकी क्या मान-मर्यादा रखेगा ?

विजयसिंह देव—वह यह कहाँ कहता है और कहाँ कहता हूँ मैं ? मैं तो अनुभव कर रहा हूँ कि इस समय राज्यकी स्वतंत्रताकी रक्षाका प्रयत्न छोटी आपत्तिके स्थानपर बड़ी आपत्तिको निमंत्रण देना है। जब दिल्ली-पति पृथ्वीराज और कान्यकुब्ज-पति जयचन्द देशको स्वतंत्र न रख सके तो हम क्या कर लेंगे ?

सुरभी पाठक—परमभट्टारक गांगेयदेव और कर्णदेवने वैसे ही कार्य किये थे जैसे उस समय आर्यावर्तके कोई नरेश न कर सके थे।

विजयसिंह देव—वह समय बीत गया और अब वैसा प्रयत्न दुःस्साहस होगा। फिर मैं वह करनेको प्रस्तुत नहीं हूँ। आप जानते हैं राज-निर्णय अन्तिम निर्णय है और उसे मैं कर चुका हूँ।

[सुरभी पाठक चुप होकर मस्तक झुका लेता है।
कुछ देरको सन्नाटा छा जाता है।]

विजयसिंह देव—अच्छा, राज-पत्र दीजिए महामंत्रीजी, (चण्डपीडसे) महासेनापति, इसे तत्काल कुतुबुद्दीन ऐबकके पास भेजो और महामुद्राधिकृतसे पूछो कि मेरी आज्ञाके बिना यह पत्र महामंत्रीजीको कैसे दिया गया ?

[सुरभी पाठक वह पत्र नहीं देता और चुप रहता है।

विजयसिंह देव—(कड़ककर) क्या आप वह पत्र न देंगे ?

[सुरभी पाठक चुप रहता है।]

विजयसिंह देव—(और भी जोरसे) राजाज्ञाकी यह अवहेलना !

[सुरभी पाठक चुप रहता है।]

विजयसिंह देव—(गरजकर) क्या मुझे आपको महामंत्री पदसे च्युत करना पड़ेगा ?

[सुरभी पाठक चुप रहता है ।]

विजयसिंह देव—(बहुत ज़ोरसे) क्या मुझे आपका अपमानकर आपको बन्दी बनाना होगा ?

सुरभी पाठक—(खड़े होकर भावपूर्ण शब्दोंमें) परमभट्टारक, मैं सोच रहा था कि मैं क्या उत्तर दूँ। महाराज, आपका और आपके वंशका लवण मेरे रोम रोममें भिदा हुआ है। (हाथ बढ़ाकर और कँपाकर) इस शरीरकी अस्थियाँ, मांस और रुधिर श्रीमान्‌के अन्नसे ही पुष्ट होकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। (दाढ़ीपर हाथ फेरकर) इस वृद्धावस्था तक कभी मैंने परमभट्टारककी आज्ञाके एक वाक्यका और एक वाक्य क्या, एक शब्द, एक अक्षर और मात्राका भी उल्लंघन नहीं किया। आपहीकी नहीं, आपके पिता और पितामहकी भी कोई बातको कभी नहीं टाला, परन्तु, श्रीमान्, आपकी और आपके वंशकी अपेक्षा मातृभूमिका मुझपर अधिक ऋण है। कुतुबुद्दीनके साथ युद्ध न हो, इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। मैं तो जिस छोटी-सी कुटीमें आज रहता हूँ, जैसा भोजन करता हूँ और जैसा वस्त्र पहनता हूँ वैसा ही सदा रहूँगा; महामंत्री रहूँगा तो भी वैसा ही रहूँगा; परन्तु मातृभूमिकी स्वाधीनता सुरभी पाठकके रहते न जायगी। वह विन्ध्य पर्वत, वह नर्मदा नदी, जिसे अब तक शक एवं हूण सैनिक और गजनी एवं गोरीके विदेशी म्लेच्छ भट छूकर अपवित्र नहीं कर सके हैं, सुरभी पाठकके रहते, फिर भी, विदेशियोंद्वारा न छुए जा सकेंगे।

विजयसिंह देव—(क्रोधसे) तो आप राज्यसे विद्रोह करते हैं ?

सुरभी पाठक—यदि इसका अर्थ विद्रोह है तो वही हो।

विजयसिंह देव—(और भी क्रोधसे) तब तो आपका स्थान महा-दण्डनायकका न्यायालय और दण्डपाशिक एवं दण्डकका कारागार हैं। (चण्डपीडसे क्रोधित होकर) महासेनापति चण्डपीड, मैं सुरभी पाठकको सन्धिविग्रहिक महामात्यके पदसे पदच्युत कर वह पद तुम्हें देता हूँ। सुरभी पाठकको बन्दी करो।

चण्डपीड—जो आज्ञा (ज़ोरसे) चाटगणो !

[चार चाटोंका प्रवेश।]

चण्डपीड—सुरभी पाठकको बन्दी करो।

सुरभी पाठक—(गरजकर) सावधान चाटो, यदि आगे बढ़े तो....। सुरभी पाठकको बन्दी करना सहज नहीं है।

[चाट, राजा और चण्डपीडकी ओर देखते हैं। सुरभी पाठकका हाथके कागजको फाड़कर फेंकते हुए शीघ्रतासे प्रस्थान। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—चण्डपीडके प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[दालान अन्य दालानोंके सदृश ही है। भित्तिका रंग भिन्न है। चण्डपीडका प्रवेश। वह बेचैनीसे इधर उधर टहलता है। बीच बीचमें ठहरकर कुछ सोचने लगता है और फिर टहलने लगता है। देवदत्तका प्रवेश। देवदत्त इस समय कवच और शिरस्त्राण पहने है। आयुधोंसे भी सुसज्जित है। हाथमें ऊँचा शल्य लिये है। देवदत्त शल्यको मस्तकपर लगा चण्डपीडका अभिवादन करता है। चण्डपीड सिर झुका अभिवादनका उत्तर देता है।]

देवदत्त—श्रीमान्, वे नहीं पकड़े जा सके।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे) क्या कहा ? वह नहीं पकड़ा जा सका ?

देवदत्त—(सिर झुकाकर) हाँ, श्रीमान्।

चण्डपीड—महाकोशलके युवक क्षत्रिय बलाधिकृत सौ अश्वारोहियोंके साथ एक वृद्ध ब्राह्मणको बन्दी नहीं कर सके ?

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्।

चण्डपीड—क्यों, क्या चाटोंके समान सेनाके भटोंने भी धोखा दिया ? क्या उन्होंने भी उसे बन्दी करना अस्वीकृत कर दिया ?

देवदत्त—(सिर उठाकर) नहीं, यह बात नहीं हुई।

चण्डपीड—तब ?

देवदत्त—वे अपने पुरुषार्थसे बच गये।

चण्डपीड—(और भी आश्चर्यसे) एक वृद्ध सौ अश्वारोहियोंके बीचसे अपने पुरुषार्थसे बच गया ?

देवदत्त—हाँ, यही हुआ, श्रीमान्।

चण्डपीड—महाकोशलके बलाधिकृतके स्वयं रहते हुए ?

देवदत्त—(सिर झुकाकर) क्या कहूँ।

चण्डपीड—इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित रहते हुए ?

[देवदत्त कोई उत्तर न दे सिर और भी झुका लेता है।]

चण्डपीड—हुआ क्या ?

देवदत्त—(सिर उठाकर) आश्चर्यजनक, महान् आश्चर्यजनक घटना हुई। ऐसी जैसी मैंने अब तक नहीं देखी थी, श्रीमान्।

चण्डपीड—कैसी ? सारा वृत्तान्त बताओ।

देवदत्त—जब श्रीमान्ने मुझे सौ अश्वारोहियोंके साथ कुटीको घेरकर उन्हें बन्दी करनेकी आज्ञा दी, और हम लोग कुटीपर पहुँचे, तब चलनेको प्रस्तुत कसा हुआ घोड़ा उनकी कुटीके द्वारपर खड़ा था और वे बाहर निकल उसपर आरोहण करने ही वाले थे।

चण्डपीड—अच्छा, फिर ?

देवदत्त—हमें देखते ही वे खड़े हो गये। सीधे खड़े हुए, श्रीमान्, दोनों हाथ अपनी कटिपर रखकर, सीधे....

चण्डपीड—तुम तो उसके खड़े होनेका वैसा ही वर्णन करते हो मानो शिवजी गंगावतरणके लिए खड़े हों। (ज़ोरसे हँस पड़ता है।)

देवदत्त—हँसनेकी बात नहीं है, श्रीमान्, आपने यहाँ खड़े खड़े ही उनके खड़े होनेकी ठीक ठीक उपमा दे दी : सचमुच वे उस समय गंगावतरणके लिए खड़े हुए शिवजीके समान ही दिखते थे। चाँदनीमें चमकती हुई उनकी खुली लम्बी शिखाके केशोंसे सचमुच शिवजीकी उस समयकी जटाओंका ही मिलान किया जा सकता है।

चण्डपीड—मूर्खताकी पराकाष्ठा है।

देवदत्त—आपने वह दृश्य देखा नहीं, इसीलिए आप ऐसा कहते हैं, श्रीमान्।

चण्डपीड—अच्छा, अच्छा, सुन लिया, फिर क्या हुआ ?

देवदत्त—दो पल पर्यन्त वे उसी प्रकार खड़े हुए एकटक हम लोगोंकी ओर देखते रहे....

चण्डपीड—और तुम लोग मिट्टीकी मूर्तियोंके समान उन्हें....

देवदत्त—श्रीमान्, सभी मन्त्र-मुग्ध-वत् हो गये थे।

चण्डपीड—और सब चाहे न हुए हों, पर तुम अवश्य हो गये थे। बिना तुम्हारी आज्ञाके वे बेचारे भटगण क्या कर सकते थे ?

देवदत्त—वह दृश्य ही वैसा था, श्रीमान्।

चण्डपीड—अच्छा, आगे बढ़ो।

देवदत्त—दो पल उपरान्त उन्होंने कड़ककर कहा—तुम मुझे बंदी करने आये हो मूर्खो ! सुरभी पाठकको बंदी करना सहज नहीं।

चण्डपीड—मूर्ख शब्दका उसने ठीक प्रयोग किया।

देवदत्त—उनके ये वाक्य हम सबोंको विद्युत्की कड़कड़ाहटके समान ज्ञात हुए।

चण्डपीड—और चाहे किसीको ज्ञात न हुए हों, पर तुम्हें अवश्य हुए।

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, वह स्वर ही ऐसा था। चारों ओरकी विन्ध्यशिखरावलीमें उसकी प्रतिध्वनि हुई थी।

चण्डपीड—तुम्हारे मास्तिष्कमें हुई होगी; अच्छा फिर क्या हुआ ?

देवदत्त—उसके पश्चात् वे उछलकर घोड़पर बैठ गये और उन्होंने अपना घोड़ा सर्पट छोड़ दिया।

चण्डपीड—और तुम लोग वैसेके वैसे खड़े रह गये ?

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, हम लोगोंने उनका पीछा किया।

चण्डपीड—परन्तु उन्हें पा नहीं सके, क्यों ?

देवदत्त—नहीं, नहीं, धुआँधारके निकट उनके घोड़को भी घेर लिया।

चण्डपीड—फिर ?

देवदत्त—फिर उन्होंने युद्ध किया। उस समय जब घूम घूमकर वे खड्ग चलाते थे, तब चमकती हुई चाँदनीमें उनकी शिखा और दाढ़ीके हिलते हुए सिंहकी शटाके समान जान पड़ते थे। भास होता था मानो घोड़पर एक सिंह बैठ गया है, वह खड्ग चला रहा है और उसकी शटा हिल रही है।

चण्डपीड—यह तो काव्य-रचना हुई, घोड़पर सिंह नहीं बैठ सकता; अच्छा फिर क्या हुआ ?

देवदत्त—युद्ध करते करते जब उन्हें बचावका कोई उपाय न दिखा तब वे घोड़से उछलकर धुआँधारके प्रपातमें कूद पड़े।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे चिल्लाकर) क्या, धुआँधारके प्रपातमें कूद पड़ा ?

देवदत्त—श्रीमान्, वही तो कहता हूँ। आश्चर्य, महाआश्चर्यजनक घटना है। आप पूरी सुनें तो। मैंने कहा न कि जीवनमें ऐसी चकित कर देनेवाली घटना कभी नहीं देखी।

चण्डपीड—और सुनना क्या है, धुआँधारमें कूदनेके पश्चात् वह मर गया होगा। उस प्रपातमेंसे कौन बच सकता है ? समझ गया, तुम्हें उसे बन्दी करनेकी आज्ञा थी और वह मर गया, इसी लिए तुम इतने घबराये हुए हो; पर इसमें घबरानेकी कोई बात नहीं।

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, वे मरे नहीं।

चण्डपीड (पैर पटककर जल्दी जल्दी) देवदत्त, या तो तुम आज विक्षिप्त हो गये हो, या तुमने कोई मादक द्रव्य खाया है।

देवदत्त —ये दोनों बातें नहीं हैं, श्रीमान् घटना ही ऐसी है।

चण्डपीड—(चिल्लाकर) कैसी घटना ! क्या वह धुआँधारमें कूद कर भी बच गया ?

देवदत्त—बाल बाल, श्रीमान्, प्रपातके नीचे पानीके बहावमें मैंने अपनी आँखों उन्हें हाथोंसे तैरते देखा।

चण्डपीड—(जल्दीसे देवदत्तके निकट बढ़कर) और जब तुमने उसे तैरते हुए देखा तब उसपर बाण नहीं चलाया और न बाण चलानेकी भटोंको आज्ञा दी ?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) बाण चलानेकी तो मुझे आज्ञा नहीं थी।

चण्डपीड—पर उसे भाग जाने देनेकी भी आज्ञा नहीं थी।

देवदत्त—यह तो ठीक है, श्रीमान्, किन्तु....

चण्डपीड—(बात काटकर) किन्तु परन्तुकी कोई बात नहीं है देवदत्त, वह तो बुद्धिकी बात है। जिस समय तुमने देखा था कि

उसका हाथमें आना सम्भव नहीं है, उस समय उसपर बाण चलाना था। फिर वह समय तो ऐसा था जब तुम्हारे बाणोंसे रक्षा करनेका भी उसके पास कोई साधन न था।

देवदत्त—परन्तु, श्रीमान्, उस समय यदि मेरे मनमें यह विचार भी उठता तो भी उस दिव्य मूर्तिपर मेरे हाथों बाण चलना सम्भव न था।

चण्डपीड—यह भावुकता है। राजनीतिमें भावुकताको कोई स्थान नहीं है। यदि तुमसे बाण न चलते तो साथके भटोंको आज्ञा देनी थी कि वे बाण चलाते।

देवदत्त—वह भी मैं नहीं कर सका, श्रीमान्। बात यह है कि यह विचार ही मेरे मनमें नहीं उठा। फिर यदि मैं भटोंको ऐसी आज्ञा देता भी, तो मुझे तो बहुत सन्देह है कि वे बाण चलाते।

चण्डपीड—यह तुम्हारा निरर्थक सन्देह है। और यदि वे न चलाते तो मेरा उन्हें स्मरण दिला, कड़ककर, कहना चाहिए था कि उन चाटोंके समान, जिन्होंने उसे बन्दी नहीं किया उन भटोंका भी वध निश्चित है। (कुछ ठहरकर) अच्छा फिर ?

देवदत्त—फिर क्या, श्रीमान्, कुछ देरमें वे आँखोंकी ओट हो गये।

चण्डपीड—और तुम लोग अपना-सा मुँह लेकर चले आये, क्यों ?

देवदत्त—फिर हम लोग और क्या करते ?

चण्डपीड—क्यों ? चारों ओर घूमकर उसका पता लगाते, वह सदा पानीमें थोड़े ही रहता।

देवदत्त—उस घनघोर वनमें रात्रिके समय ? दिनमें ही वहाँ हाथको हाथ नहीं सूझता, रात्रिको हमें उनका पता क्योंकर लगता, श्रीमान् ?

चण्डपीड—(लम्बी साँस ले और कुछ ठहरकर) जो कुछ हुआ सो हुआ। अभी तो आखेट हाथसे निकल ही गया, पर कहाँ जाता है? प्रातःकाल होनेमें अब बहुत थोड़ा समय है; अभी पता लगवायेंगे। पर, देवदत्त, इस घटनासे तुम्हारी बड़ी हानि हुई।

देवदत्त—(सिर नीचा कर हाथ जोड़) जैसा श्रीमान् समझें।

चण्डपीड—तुम्हें कदाचित् ज्ञात नहीं है कि मैं आज रात्रिको महामात्य बना दिया गया हूँ। मैं बहुत शीघ्र परमभट्टारकसे तुम्हें महासेनापति बनवानेवाला था।

देवदत्त—(गिड़गिड़ाकर) फिर, श्रीमान्, एक दिनकी घटनाके कारण मेरी अब तककी समस्त सेवाओंपर पानी फिर गया?

चण्डपीड—यह घटना ही ऐसी है।

देवदत्त—मैं तो स्वयं कहता हूँ कि आश्चर्य, महान् आश्चर्यजनक घटना है। किसीने अकेले किसीको सौ अश्वारोहियोंसे युद्ध करते देखा है! किसीने किसीको धुआँधारके प्रपातमें कूदते और इतने पर भी न मरते हुए सुना है! सारे सैनिक साक्षी हैं, श्रीमान्।

चण्डपीड—यही अन्तिम एक ऐसी बात है, जिससे तुम्हारा अपराध क्षमा किया जा सकता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, मैं यत्न करूँगा, पर इसके बदलेमें तुम मेरे लिए क्या करोगे?

देवदत्त—(जल्दीसे) आपने जब भी जो कुछ करनेको कहा है, क्या इस किंकरने उसे सदा ही करनेका यत्न नहीं किया है?

चण्डपीड—(देवदत्तके और निकट जा धीरेसे) देखो, देवदत्त, तुम भी इसी कलचुरी कुलके हो और मैं भी।

देवदत्त—अवश्य।

चण्डपीड—परमभट्टारक अब वृद्ध हो चले हैं, उनके कोई पुत्र नहीं है।

देवदत्त—सचमुच बड़े खेदकी बात है, श्रीमान्।

चण्डपीड—नहीं, इसमें एक हर्षकी बात भी है, वही तो तुमसे कहनी है।

देवदत्त—अच्छा !

चण्डपीड—उनकी राजकुमारी रेवासुन्दरीसे जिसका विवाह होगा वही इस सिंहासनपर बैठेगा।

देवदत्त—यह तो ठीक ही है।

चण्डपीड—उस मूर्ख, अकुलीन, गोंड़ यदुरायने इसीका यत्न किया था। रेवासुन्दरी उसके प्रति आकृष्ट भी हुई थी। कदाचित् अभी भी उसके हृदयमें उस गोंड़का प्रेम है। परन्तु यदुरायका और राजकुमारीका विवाह न पहले संभव था न आज संभव है।

देवदत्त—कभी नहीं।

चण्डपीड—जो कुल कुलीनताके लिए सारे भारतमें प्रसिद्ध है, जिसे कुलीनताका ही सबसे अधिक गर्व है, उस कुलकी राज-कन्याका एक अकुलीन गोंड़से विवाह हो, यह कल्पना करनेकी भी बात नहीं है।

देवदत्त—कदापि नहीं, श्रीमान्।

चण्डपीड—तुम्हारी पत्नी विन्ध्यबालाकी रेवासुन्दरीसे अत्यधिक मित्रता है; रेवासुन्दरी उनकी सम्मतिका भी बहुत आदर करती है।

देवदत्त—यह तो है, श्रीमान्, राजकुमारी उसपर बड़ी कृपा रखती हैं।

चण्डपीड—यदि विन्ध्यबाला रेवासुन्दरीको शनैः शनैः समझाकर मुझसे विवाह करनेके लिए तैयार कर दें, तो मेरे सिंहासनासीन होते ही तुम सान्धिविग्रहिक महामात्य होगे।

देवदत्त—अच्छा।

चण्डपीड—हम कुलपुत्रोंको ही तो इन पदोंको ग्रहण करनेका अधिकार है। एक गोंड़ने यत्न किया कि कोई पद पावे, वह निकला। कुछ पीढ़ियोंसे महामंत्रीपद इन भुखमरे ब्राह्मणोंको दिया जाने लगा था, वह ब्राह्मण भी निकला। मुसलमानोंकी एक नवीन आपत्ति आ गई थी, पर मैंने परमभट्टारकको कुतुबुद्दीन ऐबककी इच्छानुसार ही उससे सन्धि करनेके लिए राजी कर लिया है। तुम मुझे यदि इस कार्यके करनेका वचन दो, तो मैं तुम्हें शीघ्र ही महासेनापति, महाबलाधिकृत बनवा दूँगा।

देवदत्त—वचन मैं क्या दूँ, श्रीमान्, क्या मुझपर आपका विश्वास नहीं है ? आजतक जो जो आज्ञाएँ आपने दी हैं उन सबको अक्षरशः पालन करनेका मैंने यत्न किया है। इसके लिए भी मैं पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

चण्डपीड—(हर्षसे) तो तुम समझ लो कि तुम महासेनापति हो गये।

[देवदत्त शल्यको सिरसे लगा अभिवादन करता है]

चण्डपीड—अच्छा देखो, अब प्रातःकाल होनेमें विलम्ब नहीं है। प्रातःकाल पचास अश्वारोहियोंको धुआँधारके वनमें भेजो कि सुरभी पाठकका पता लगायें।

देवदत्त—जो आज्ञा।

[देवदत्त पुनः शल्यको सिरपर लगा चण्डपीडको अभिवादन कर एक ओरको जाता है। चण्डपीडका दूसरी ओर प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—श्मशान

समय—रात्रि

[कई चिताएँ जल रही हैं। अँधेरेमें जो कुछ दिखाई देता है वह इन्हीं चिताओंकी अग्निके प्रकाशके कारण। कई जगह राख पड़ी है, कई जगह खोपड़ियाँ और अस्थियाँ भी। यदुराय एक चिताके पास खड़ा हुआ है। उसके दाहिने हाथमें एक खोपड़ी है, जिसे वह ध्यानसे देख रहा है। चिताकी लपटोंका प्रकाश उसके मुख तथा शरीरपर पड़ रहा है, जिससे जान पड़ता है दीर्घ कालसे न उसका क्षौर हुआ है और न वस्त्र धुले हैं। उसके सिरके बाल भी अस्त-व्यस्त हैं। खोपड़ीको देखते हुए उसके मनमें जो भाव उठ रहे हैं वे भी उस प्रकाशके कारण उसकी मुद्रासे स्पष्ट झलकते हैं।]

यदुराय—(कुछ देर पश्चात्) निकृष्ट....हाँ,....निकृष्ट गोंड़की खोपड़ी !....नहीं नहीं, पामर....हाँ, हाँ, पामर गोंड़की खोपड़ी ! (कुछ देर रुक कर) पर निकृष्ट और पामर गोंड़की ही क्यों; कुलीन ब्राह्मण....कुलीन क्षत्रिय....कुलीन वैश्यकी क्यों नहीं ? (फिर कुछ देर ठहर) हाँ, हाँ, अवश्य किसी न किसी कुलीनकी !...जब तेरे भीतर मज्जा भरी होगी, और ऊपर चर्म तथा केश होंगे, जब इन दोनों गढ़ोंमें आँखें होंगी और दाँतोंके बीचमें जीभ,....तब....तब तुझमें अकुलीनोंके लिए कैसे-कैसे विचार उठते होंगे, तब तेरी आँखें अकुलीनोंकी ओर किस प्रकार देखती होंगी, तब तेरी जीभ अकुलीनोंके लिए कैसे शब्द और वाक्योंका उच्चारण करती होगी ? —चल दूर हट कुलीनोंकी खोपड़ी ! (जोरसे फेंकता है) कुछ देर जमीनपर पड़ी हुई उस खोपड़ीको देखनेके पश्चात् एकाएक उसे बायें हाथसे उठा दाहिना हाथ उसपर फेरते हुए) नहीं, नहीं....नहीं, नहीं, मैंने निरर्थक तेरा अपमान किया ? कदाचित् किसी अकुलीनकी ही

हो....किसी निकृष्ट गोंड़की, किसी पामर गोड़की हो। (कुछ देर चुप रह घूमते हुए) गोंड़ निकृष्ट !....गोंड़ पामर !....हम गोंड़ोंके लिए....हमारे लिए जो इस प्यारी भूमिके आदि निवासी हैं, हमारे लिए जो इस भूमिके पर्वतों, वनों, नदियों, निर्झरों, सरोवरों, खेतोंके प्रथम स्वामी हैं, उन हम गोंड़ोंके लिए अपनेको कुलीन कहनेवाले इन सवर्ण आर्यों के कैसे—कैसे भाव हैं ! (दाँत पीसते हुए) ओह !.... ओह ! (फिर कुछ रुककर) हममें कितने ही उच्चगुण क्यों न हों, हम इनके राज्यमें किसी उत्तरदायी पदपर आसीन नहीं हो सकते !.... हम इनकी लड़कियोंसे विवाह नहीं कर सकते....अरे हमारा छुआ हुआ भोज़न....हाँ, भोजन इनके खानेके योग्य नहीं रह जाता।.... इतना....इतना ही नहीं यदि देशपर आपत्ति आये, तो, यद्यपि हम इनकी अपेक्षा इस देशके पुराने निवासी हैं, हमें अपने देशकी रक्षा....हाँ, रक्षा तकका अधिकार नहीं !....और—और हमारा दोष....दोष क्या ?....गोंड़ कुलमें जन्म लेना ही हमारा दोष है...जो....जो दैवाधीन है,....केवल संयोगकी बात....पुरुषार्थका प्रश्न ही नहीं। (एक बुझी हुई चिताके निकट जा, कुछ राख उठा कर) तू कुलीनके शवकी राख है या अकुलीनके ? (दूसरी बुझी हुई चिताकी राख उठा) तुझमें और उस चिताकी राखमें कोई अन्तर है ? (एक जलती हुई चिताके निकट जा) किसका शव जल रहा है तुझमें.... किसी कुलीनका या अकुलीनका ? (दूसरी जलती हुई चिताके निकट जा) और तुझमें किसका है ?....यदि उसमें कुलीनका है और तुझमें अकुलीनका तो दोनोंके जलनेकी विधिमें कोई अन्तर है ? (फिर कुछ ठहर कर चारों ओर देखके) कोई भेद भाव....कोई भेद भाव नहीं है यहाँ....इसी....इसीलिए तो गोंड़ोंके आदि देव शंकर यहाँ विहार करते

हैं....इसी....इसीलिए तो कैसा सुन्दर...कैसा रमणीय है यह स्थल ! ....(कुछ रुककर इधर उधर घूमते हुए) और वह....वह रेवासुन्दरी भी कितनी सुन्दर थी....कितनी रमणीय ! देखती भी मेरी ओर किस हाँ....किस प्रकार थी !....खड़े हो कुछ ठहर) अर्द्धविकसित कुसुम अथवा द्वितीयाकी चन्द्ररेखासे ही उसकी तुलनाकी जा सकती है। (फिर कुछ ठहर कर एक चिताकी लपटको देखते हुए) नहीं नहीं, अर्द्धविकसित कुसुम और द्वितीयाकी चन्द्ररेखासे नहीं, उसकी समताकी जानी चाहिए उस चिताकी प्रज्वलित अग्निशिखासे !....(दाँत पीस कर) कुलीन थी न वह भी !....महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ कुलीन कलचुरि परम माहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधिपति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् श्रीविजयसिंह देवकी राजकुमारी ! (कुछ रुककर) कुलीनोंमें प्रेम और....और वह अकुलीनोंके लिए। मेरे प्रति रेवासुन्दरीका प्रेम !.... असंभव....असंभव कल्पना है !....(दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँध दाँतोंको ज़ोर ज़ोरसे पीसते हुए) कुलीन !....कुलीनताके मदमें मदोन्मत्त.... (फिर चुप हो इधर उधर घूमते हुए चारों ओर देखता है।)

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राजप्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है। भित्तिका रंग भिन्न है। विजयसिंह देव और चण्डपीडका प्रवेश।]

विजयसिंह देव—तो सुरभी पाठकका अब तक कोई पता नहीं लगा ?

चण्डपीड—बहुत यत्न करनेपर भी नहीं लगा, श्रीमान्, पर अब भी मैं पता लगानेका पूर्ण प्रयत्न कर रहा हूँ।

विजयसिंह देव—और कुतुबुद्दीनके पास दूसरा सन्धि-पत्र लेकर दूत बिदा हो गया ?

चण्डपीड—वह तो हो गया, महाराज।

विजयसिंह देव—चण्डपीड, हम लोगोंने कार्यकी जो दिशा निश्चित की है वह मातृ-भूमिके लिए हितकर तो है न ? मैं तुम्हें पुत्रवत् मानता हूँ। हृदयसे पूछकर ठीक ठीक तो कहो ?

चण्डपीड—(गम्भीर होकर) मैंने एक बार नहीं, न जाने कितनी बार इस प्रश्नको केवल हृदयसे ही नहीं, किन्तु आत्मासे भी पूछा है, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—अच्छा।

चण्डपीड—बिना आत्मासे पूछे ऐसी बातोंके सम्बन्धमें परम-भट्टारकको कुछ सम्मति देना अपने इस जन्मको ही नहीं बिगाड़ लेना है, परन्तु मृत्युके पश्चात् नरकमें जानेकी भी तैयारी कर लेना है।

विजयसिंह देव—और तुम्हारी आत्मासे क्या उत्तर मिला ?

चण्डपीड—सदा एक ही, परमभट्टारक, कि हम लोगोंने जो कार्यकी दिशा निश्चित की है उससे मातृ-भूमिका सच्चा लाभ है। आवेशमें आकर कोई कार्य कर बैठना एक बात है और विचार कर कार्यकी दिशा निश्चित करना सर्वथा दूसरी बात, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—कैसे, चण्डपीड ?

चण्डपीड—देखिए, परमभट्टारक, मुसलमानोंका सामना इस समय कोई भी जाति नहीं कर सकती।

विजयसिंह देव—क्यों ?

चण्डपीड—उनके यहाँ एक नवीन धर्मकी उत्पत्ति हुई है। उस

धर्ममें जो जातियाँ दीक्षित हुई हैं उनमें नवीन उत्साह है। एकताकी नवीन शृंखलासे वे बँधी हैं। भ्रातृ-भावके जितने उदार विचार आज उनमें हैं उतने संसारकी किसी भी दूसरी जाति या धर्ममें नहीं हैं, महाराज।

विजयसिंह देव—तो यही कारण है कि पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंकी दिग्विजयमें उन्हें सफलता मिल रही है!

चण्डपीड—इसमें सन्देह नहीं। फिर, श्रीमान्, इस देशके धार्मिक-भाव तो बहुत ही पतित हो चुके हैं। आपसकी फूट और आपसकी मार-काटमें सारी शक्ति नष्ट हो चुकी है। जिस किसीने यहाँ मुसलमानोंका सामना किया उसकी क्या दशा हुई?

विजयसिंह देव—बहुत बुरी दशा हुई, इसमें संदेह नहीं।

चण्डपीड—दो ही मार्ग हमारे लिए थे, परमभट्टारक, एक तो हम उनसे किसी प्रकार सन्धि कर लेते, या अपनेको दूसरोंके समान ही नष्ट करा देते। पहला विचारपूर्ण, बुद्धिमानीका मार्ग था और दूसरा मूर्खतापूर्ण आवेशका। हमने पहले मार्गका अवलंबन किया है।

विजयसिंह देव—तुम ठीक कहते हो, चण्डपीड, जब तुम मेरे सामने ये बातें कहते हो तब पूर्ण-रूपसे मेरी समझमें आ जाती हैं, परन्तु जहाँ मैं अकेला हुआ कि बार बार मेरे हृदयमें उठने लगता है कि मातृ-भूमिके प्रति मैं कोई अधर्म तो नहीं कर रहा हूँ?

चण्डपीड—इस प्रकारकी शंकाएँ सदा चित्तमें उठा करती हैं, परन्तु इनका दमन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।

विजयसिंह देव—और युद्धमें भी तो महान् अनर्थ होता।

चण्डपीड—इसमें कोई सन्देह है, महाराज। जिन महलोंमें महाकोशलकी ही नहीं, सारे भारतवर्ष और विदेशोंतककी सारी

शिल्प-शक्ति लगा दी गई है, जिनके एक एक स्तम्भ, एक एक कुंभी, एक एक भरणी, एक एक झरोखेके बनानेमें उतनी ही तोलका सुवर्ण व्यय हो गया है, नष्ट हो जाते, उनका पता न लगता। (कुछ ठहरकर) वे उद्यान, जिनमें देश-देशान्तरके वृक्ष ला लाकर लगाये गये हैं, और उन्हें जीवित रखनेके लिए उन देशोंकी न जाने कितनी मृत्तिका मँगा उनकी जड़ोंमें डाली गई है, मरुभूमिमें परिणत हो जाते। (कुछ ठहरकर) वे महान् शिव-मन्दिर, जहाका वैभव कैलासके वैभवसे भी बढ़ा चढ़ा दिखाई देता है, जो नित्य नर्मदाके शुद्ध जलसे धो धोकर पवित्र रखे जाते हैं, जहाँ नित्य अखण्ड अभिषेक होता रहता है, भ्रष्ट कर दिये जाते; इतना ही नहीं, उनकी मूर्तियाँ जिन्हें यहाँकी प्रजा प्राणोंसे भी अधिक चाहती है, तोड़ दी जातीं। उन मन्दिरोंके सुवर्णके रत्न-जटित कलश जिन्हें ज्योतिषियोंने बड़े ध्यानसे मुहूर्त देख देखकर मन्दिरोंपर चढ़ाया है, विदेशियोंद्वारा उतार लिये जाते। उनके उतरनेसे देशमें अवर्षण होता, दुष्काल पड़ते और प्रजा 'हा अन्न' 'हा अन्न' चिल्लाती हुई कुत्तों और बिल्लियोंकी मौत मरती।

विजयसिंह देव—बड़ी भीषण अवस्था हो जाती, चण्डपीड!

चण्डपीड—और, फिर, परमभट्टारक, न जाने कितनोंका रक्त बहता, न जाने कितने बालक तथा नारियाँ दास-दासी बनाये जाते और कोषोंकी अपार लक्ष्मी लुट जाती।

विजयसिंह देव—हाँ, इसमें संदेह नहीं।

चण्डपीड—और, महाराज, एक बात और। वे सुन्दर सुन्दर तड़ाग,—फूले हुए कमलोंसे युक्त तड़ाग, जिनके लिए महाकोशल सारे संसारमें प्रसिद्ध है, और वे बन्दरकूदनी और धुआँधारके

अद्भुत दृश्य, जिनका अवलोकन करनेके लिए देश-देशान्तरके यात्री आते और श्रीमान्‌के राज्यकी यशोगाथाका सौरभ सारे संसारमें फैलाते हैं, विदेशियोंके हाथमें चले जाते।

विजयसिंह देव—कैसे सुन्दर दृश्य हैं!

चण्डपीड—संसारमें एसे दृश्य हैं ही नहीं, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—और हार निश्चित थी?

चण्डपीड—सर्वथा। एकका भी तो नाम बता दीजिए, महाराज, जो इनसे जीता है?

विजयसिंह देव—(कुछ सोचकर) हाँ, कोई तो नहीं दिखता।

चण्डपीड—फिर इतने लोमहर्षण काण्डके स्थानमें श्रीमान्‌को उन्हें देना क्या पड़ा, इसे भी देखिए। केवल शब्दोंमें महाराज उनके माण्डलिक कहलाएँगे और प्रतिवर्ष उन्हें कुछ दे देना पड़ेगा।

विजयसिंह देव—हाँ, है तो यही।

चण्डपीड—और वह भी बहुत दिनों तक नहीं।

विजयसिंह देव—(उत्सुकतासे) बहुत दिनों तक नहीं, यह कैसे?

चण्डपीड—परमभट्टारक जानते हैं कि गजनीका महमूद यहाँ बहुत दिनोंतक नहीं रहा। शहाबुद्दीन भी चला गया है और मैं नहीं समझता, वह लौटेगा। फिर कुतुबुद्दीन कितने दिन रहनेवाला है? इस विशाल देशपर, जिसके अन्तर्गत उनसठ तो मुख्य मुख्य राज्य ही हैं, और छोटे छोटे तो न जाने कितने, कोई विदेशी राज्य कर ही नहीं सकता।

विजयसिंह देव—यह तो ठीक है।

चण्डपीड—बस जहाँ कुतुबुद्दीन गया और ये थोड़े भी निर्बल पड़े कि हम पुनः स्वतंत्र हो जायँगे। उस अवसरको ताकते रहना

चाहिए, न कि आवेशमें आकर अपना और प्रजा दोनोंका सर्वस्व नष्ट करा देना।

विजयसिंह देव—(प्रसन्न होकर) हाँ, हाँ, यह तुम्हारा कहना ठीक है। तो महाकोशल देश सर्वदा पराधीन न रहेगा और कलचुरि सदा माण्डलिक भी नहीं ?

चण्डपीड—कदापि नहीं, महाराज। यदि इसकी सम्भावना होती तो मैं श्रीमान्‌को यह सम्मति दे सकता था ? वह सुरभी पाठक थोड़े ही कलचुरि कुलका है। कलचुरियोंका रक्त तो मेरी नाड़ियोंमें है, महाराज, इस वंश और इस देशकी प्रतिष्ठाका ध्यान जितना मुझे हो सकता है उतना उसे क्योंकर हो सकता है ?

विजयसिंह देव—ठीक कहते हो, चण्डपीड।

चण्डपीड—यह तो, श्रीमान्, केवल राजनीतिक चाल है। राजनीतिमें हमारे प्राचीन आचार्योंने जिस साम, दाम, दण्ड, भेदका वर्णन किया है उसीसे कार्य करना चाहिए। हर समय वीरताका उपयोग तो भारी भूलके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर एक बात और भी तो थी, महाराज।

विजयसिंह देव—क्या ?

चण्डपीड—(विजयसिंह देवकी ओर देखते हुए धीरे धीरे) क्या कहूँ, मुखसे नहीं निकलता, परमभट्टारक।

विजयसिंह देव—(मुसकरा कर) समझ गया, समझ गया। तुम समझते हो मेरी दशा भी पृथ्वीराज, जयचंद और परमाल देवके समान होती।

चण्डपीड—(लम्बी साँस लेकर) कौन कह सकता है, महाराज, पर मैं तो उसकी कल्पना तक करता हूँ तो काँप उठता हूँ।

विजयसिंह देव—(चण्डपीडको गले लगाकर) ओह ! तुम्हारा मुझपर इतना प्रेम, इतना स्नेह !

चण्डपीड—प्रेम और स्नेह क्या, परमभट्टारक, भक्ति कहिए। मेरे लिए तो राजा और पिता दोनों ही आप हैं। यह कुल हमारे लिए परम पूज्य है। मैं तो जब सोचता हूँ कि कोई युवराज नहीं, तो दुःखसे हृदय विदीर्ण होने लगता है।

विजयसिंह देव—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, चण्डपीड। तुम कुलपुत्र ही हो। मैं तुम्हें पुत्रवत् ही मानता हूँ। यह राज्य और रेवासुन्दरी तुम्हारी ही है।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे) हैं ! हैं ! यह श्रीमान् क्या कह रहे हैं ?

विजयसिंह—नहीं, नहीं, तुम जैसा दूरदर्शी और वीर पुरुष इस राज्यको मिलना ही सम्भव नहीं है। मेरे मनमें तो बहुत दिनोंसे यह बात थी, पर अवसर बिना कोई बात मुखसे नहीं निकलती।

चण्डपीड—नहीं, नहीं, परमभट्टारक, मैं इस योग्य नहीं। मैं तो राज-वंशका एक शुभचिन्तक किंकर मात्र रहना चाहता हूँ।

विजयसिंह देव—यदि तुम इसके योग्य नहीं तो फिर राज्यमें मुझे और कोई तो नहीं दिखता। क्या वह अकुलीन गोंड़ यदुराय इसके योग्य था ?

चण्डपीड—वह तो कल्पना तक कुलीन कलचुरियोंके लिए अधर्मकी बात थी, परन्तु...

विजयसिंह देव—किन्तु परन्तु कुछ नहीं। म तो तुम्हारा बड़ा अनुगृहीत हूँ कि तुमने मुझे ठीक समय सूचना दे, उस गोंड़को निर्वासित करा, रेवासुन्दरी और मेरे इस प्राचीन कुलकी प्रतिष्ठा रख ली।

चण्डपीड—अनुग्रहकी क्या बात है, श्रीमान्, वह तो मेरा धर्म था।

विजयसिंह देव—मैं अब वृद्ध हो चला हूँ, देशकी परिस्थिति भी इस समय अच्छी नहीं है, अतः अब मैं शीघ्र ही रेवासुन्दरीका तुमसे विवाह कर, तुम्हारा युवराज-पदपर अभिषेक कर देना चाहता हूँ। मैंने महाधर्माध्यक्षसे इस कार्यके लिए योग्य मुहूर्त निकालनेको भी कह दिया है।

चण्डपीड—अच्छा, श्रीमान्। अभी तो नृत्यमें पधारें।

[विजयसिंह देवका प्रस्थान, पीछे प्रसन्नमुख चण्डपीड भी जाता है। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—देवदत्तके भवनकी दालान

समय—सन्ध्या

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है। भित्तिका रंग भर भर भिन्न है। विन्ध्यबाला एक आसंदीपर बैठी हुई गा रही है। एक रिक्त आसंदी उसीके निकट रखी है।]

गान

मोतीसे गूँथ रही है,
सन्ध्या रजनीकी अलकें।
झुक झुक पड़तीं, नलिनीके
नयनोंपर, अलसित पलकें।
कुछ थके विचार विहंगम
उड़ हृदय नीड़में आये।
कलरव-सा गूँज उठा, सखि,
मन और न कुछ सुन पाये।

नयनोंने धुँधला-सा कुछ
उस दूर क्षितिजपर देखा।
शीतल-सी मधुर सुधामें
झलकी कलङ्ककी रेखा।

[देवदत्तका प्रवेश। विन्ध्यबाला खड़े हो उसका स्वागत करती है। देवदत्त लड़खड़ाता-सा शयनपर बैठता है। विन्ध्यबाला भी बैठ जाती है।]

देवदत्त—प्रिये, आज तुम्हें एक बड़ा शुभ सम्वाद सुनाऊँगा। मैं महाकोशलका महासेनापति, महाबलाधिकृत नियुक्त हुआ हूँ। इस उत्तरदायित्वके कारण इतने अधिक भारका अनुभव करता हूँ कि तुमसे खड़े खड़े बात करना भी सम्भव न था।

विन्ध्यबाला—मैं तो इसे शुभ संवाद नहीं मानती।

देवदत्त—(आश्चर्यसे) तुम इसे शुभ संवाद नहीं मानतीं?

विन्ध्यबाला—हाँ, नाथ।

देवदत्त—क्यों?

विन्ध्यबाला—आप इस महासेनापति पदसे कौनसा महान् कार्य करनेका विचार कर रहे हैं?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) क्या महाकोशलके महासेनापति-पदपर आसीन होना ही कुछ छोटा कार्य है?

विन्ध्यबाला—बहुत छोटा। संसारमें पदोंको नहीं, पर कार्योंको महत्त्व है।

देवदत्त—कैसे?

विन्ध्यबाला—महासेनापति ऐसे कार्य कर सकता है जो अत्यंत नीच हों और एक साधारण भट या चाट ऐसे कार्य कर सकता है जो अत्यन्त उच्च हों।

देवदत्त—(फिर कुछ सोचते हुए) तुम्हारी बातें कभी कभी ऐसी होती हैं, जो मेरी समझमें ही नहीं आतीं। महासेनापति, महाबलाधिकृतकी अपेक्षा भट या चाट उच्च कार्य कर सकता है, यह तो अद्भुत कल्पना है, विन्ध्यबाला।

विन्ध्यबाला—अवश्य कर सकता है, नाथ, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है, वरन् मैं तो और आगे बढ़ती हूँ और कहती हूँ कि इन बड़े बड़े पदाधिकारियोंसे आज इस देशमें ऐसे कार्य हो रहे हैं कि जब देशके इस कालका इतिहास लिखा जायगा उस समय ये पदाधिकारी, जो अपनेको देव-तुल्य समझते हैं, साधारण मानवोंके रूपमें भी नहीं, परन्तु राक्षसों और पिशाचोंके रूपमें चित्रित किये जायँगे। जो बेचारे भट और चाट हैं कमसे कम उनका नाम ले लेकर तो कोई न कोसेगा, क्योंकि उनके नाम इतिहासमें अंकित ही नहीं रह सकते, पर पदाधिकारी तो नाम ले लेकर कोसे जायँगे। इस समय इस देशमें कोई पद ग्रहण करना एक ऐसे महान् उत्तरदायित्वको लेना है, जिसे निभाना सहज नहीं।

देवदत्त—और तुम समझती हो कि मैं उस उत्तर-दायित्वको ग्रहण करनेके लिए योग्य नहीं हूँ?

विन्ध्यबाला—मैं तो उसके लिए आपको सर्वथा अयोग्य समझती हूँ।

देवदत्त—(क्रोधसे) पत्नीके द्वारा पतिका इस प्रकार तिरस्कार!

विन्ध्यबाला—नाथ, यह तिरस्कार नहीं है। भगवान् जानते हैं, मैं अपने लिए आपको कैसा मानती हूँ। मेरे आप आराध्य देव हैं। पत्नीके नाते मैं आपका पूजन करती हूँ। आपपर मेरी अगाध भक्ति है, प्रेम है, परन्तु यदि मैं आपको किसी बातके लिए अयोग्य पाती

हूँ तो मेरा कर्तव्य और धर्म हो जाता है कि ठीक समयपर आपकी अयोग्यता और दोषका मैं आपको ज्ञान करा दूँ। मैं यदि यह न करूँगी तो आपके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, धर्म है, उसका पालन न होगा। मैं आपको महाकोशलके महासेनापति-पदके सर्वथा अयोग्य मानती हूँ।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—इस पदपर आसीन होनेके लिए इस समयकी स्थितिको देखते हुए आपने क्या कोई कार्य-दिशा पहलेसे सोच रक्खी है ?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) कार्य-दिशाका क्या अर्थ है, विन्ध्य-बाला ? महासेनापतिके जो निश्चित कार्य हैं, मैं भी वे करूँगा।

विन्ध्यबाला—निश्चित कार्यसे आपका क्या अभिप्राय है ?

देवदत्त—(झुँझलाकर) तुम्हारी बात ही मेरी समझमें नहीं आती।

विन्ध्यबाला—तभी तो कहती हूँ कि आप इस पदके योग्य नहीं।

देवदत्त—तुम्हारी एक नारीकी, बात मेरी समझमें नहीं आई, इसलिए मैं महासेनापति पदके योग्य नहीं रहा ?

विन्ध्यबाला—नहीं, इसलिए आप अयोग्य हैं, यह बात नहीं है, पर इसलिए आप योग्य नहीं हैं कि आपने इस समयमें भी बिना कोई कार्य-दिशा निश्चित किये इस पदको स्वीकार कर लिया है। नाथ, इस समय देशपर विदेशियोंका आक्रमण हो रहा है। आपके पड़ोसी-राज्यके प्रधान दुर्ग कालिंजरपर कुतुबुद्दीन ऐबकका अधिकार हो गया है। आपके नरेशने कुतुबुद्दीनका माण्डलिक होना स्वीकार कर लिया है। इस समय महाकोशलके सच्चे महासेनापतिका मार्ग, महासेना-पतिके कार्योंकी जो एक निश्चित लकीर खिंची हुई है, उसपर चूनेकी चक्कीके बैलके सदृश चलना नहीं है। यही उसकी अयोग्यताकी चरम-सीमा है और इतिहासमें उसे कलंक लगानेकी कार्यदिशा।

आपको नारी मार्ग बता रही है, आपकी पत्नी मार्ग बता रही है, नारी नरसे निम्न कोटिकी होती है, पत्नी पतिसे बहुत छोटी वस्तु है, इन बातोंको आप अपने हृदयसे निकाल दीजिए। नारी और पत्नीकी स्थितिसे ऊपर उठकर मैं अपना श्रेष्ठत्व बतानेके लिए, या आपपर धाक जमानेके लिए, यह सब नहीं कर रही हूँ, पर आपपर मेरी जो अगाध श्रद्धा है, भक्ति है, प्रेम है, उसके कारण आपसे यह निवेदन कर रही हूँ। मुझे बड़ा दुःख है कि आपने यह पद स्वीकार किया।

देवदत्त—बहुत कम पत्नियाँ अपने पतियोंके सौभाग्यपर इस प्रकार दुःख प्रकट करती होंगी।

विन्ध्यबाला—यह मेरा दुर्भाग्य है, और तो क्या कहूँ। (कुछ ठहरकर) अच्छा, आप अपने पदका कार्य तो महामंत्रीजीकी सम्मतिसे ही करेंगे न ?

देवदत्त—नियमोंके अनुसार यह करना ही पड़ता है।

विन्ध्यबाला—क्यों ? चण्डपीडने तो ऐसा नहीं किया, वरन् उसने तो सान्धिविग्रहिक महामंत्रीके कार्य तकमें हस्तक्षेप किया और अन्तमें स्वयं महामंत्री हो गया।

देवदत्त—आह ! विन्ध्यबाला, वह दूसरी बात है।

विन्ध्यबाला—क्यों, दूसरी बात क्यों ? वह भी तो महासेनापति था। दूसरी बात इसलिए है न कि वह बुद्धिमान् है, चतुर है ?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) अच्छा, अच्छा, अब तुम पकड़ी गईं। यदि तुम उन्हें इतना बुद्धिमान् और चतुर समझती हो तो फिर उन्हींकी सम्मतिसे मैं अपने कार्य क्यों न करूँ ?

विन्ध्यबाला—वह बुद्धिमान् और चतुर है, इसमें सन्देह नहीं, पर उसकी बुद्धिमत्ता और चातुर्य देशके कल्याणमें न लगकर अपने स्वार्थ-

साधनमें लगे हुए हैं। इस समय किसी दूसरे ऐसे व्यक्तिकी आवश्यकता है जो इस देशकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करे। चण्डपीडके कार्योंकी ओर थोड़ी दृष्टि डालिए। उसने कितने बड़े बड़े कार्य कर डाले, पर वे कार्य किस प्रकारके हैं यह भी देखिए।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—यदुरायके सदृश वीर-शिरोमणि और कार्य-कुशल भटको उसने सेनासे निकलवा राज्यसे निर्वासित करा दिया। कुतुबुद्दीनसे सन्धि करनेपर महाकोशलके अधिपतिको उसका माण्डलिक बनानेके लिए तैयार कर लिया। महामंत्रीजीके समान बुद्धिमान् मनुष्यको पदच्युत करा उनका पद स्वयं ले, उन्हें बन्दी करानेकी राजाज्ञा ले ली और अन्तमें आपको महासेनापति बनवा दिया, जिससे सेना भी उसीकी मुट्ठीमें रहे।

देवदत्त—इतना ही नहीं, विन्ध्यबाला, मैंने अभी अभी सुना है कि उनकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न हो परमभट्टारकने रेवासुन्दरीका विवाह भी उनसे कर उन्हें युवराज-पदपर बिठानेका निश्चय कर लिया है। इस समय उन जैसा बुद्धिमान् महाकोशल देशमें नहीं है।

विन्ध्यबाला—(आश्चर्यसे) अच्छा, यह भी हो गया ? अब परम भट्टारक विजयसिंह देवके पश्चात् परमभट्टारक चण्डपीड देव महाकोशलके सिंहासनपर आसीन होंगे !

देवदत्त—और इस कार्यमें तुम्हारे सहयोगकी भी आवश्यकता है।

विन्ध्यबाला—एक नारीके सहयोगकी ?

देवदत्त—(मुसकराके) तुम क्या यह समझती हो कि मैं नारियोंको हेय दृष्टिसे देखता हूँ ?

विन्ध्यबाला—आप ही नहीं, सारा नर-समाज उन्हें हेय दृष्टिसे

देखता है, पर आप यह न समझिए कि इससे मुझे तनिक भी क्लेश होता है। नरोंका कार्य अपना कार्य करते जाना है और नारियोंका अपना। नर, नारियोंको हेय दृष्टिसे देखते हैं पर विशेषता यह है कि इतनेपर भी नारियाँ उन्हें पूज्य-दृष्टिसे देखती हैं। पर जाने दीजिए इसे, यह बताइए कि चण्डपीडके शुभ-संकल्पमें मेरे किस प्रकारके सहयोगकी आवश्यकता है?

देवदत्त—उन्होंने मुझसे इस सम्बन्धमें कई बार बातचीत की है, पर मैं तुमसे आज ही कहता हूँ।

विन्ध्यबाला—कदाचित् इसलिए कि आज ही आप महासेनापति हुए हैं?

देवदत्त—तुम तो सब कुछ समझ जाती हो। अच्छा, सुनो। परम भट्टारकका रेवासुन्दरीके साथ चण्डपीडके विवाह करनेका विचार, तो तुमने सुन ही लिया। पर चण्डपीडको सन्देह है कि रेवासुन्दरीका प्रेम यदुरायपर है। कलचुरियोंकी कुलीनताके कारण यदुरायसे रेवासुन्दरीका विवाह असम्भव है। रेवासुन्दरीको चण्डपीडसे विवाह तो करना ही पड़ेगा, पर वे चाहते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो वह अपनी इच्छासे यह विवाह करे। तुमपर रेवासुन्दरीका अत्यधिक प्रेम है, तुम्हारी सम्मतिका वह मूल्य भी बहुत करती है, अतः चण्डपीडकी इच्छा है कि तुम रेवासुन्दरीको उनके साथ विवाह करनेके लिए राजी कर दो।

विन्ध्यबाला—अब मुझे आपके महासेनापति बनाये जानेका एक और रहस्य ज्ञात हुआ। जो भाषण अभी आपने किया वह भी कदाचित् चण्डपीडने ही आपको रटाया होगा। इस भाषणका अर्थ आपने समझा?

देवदत्त—क्या?

विन्ध्यबाला—इसका यह अर्थ है, नाथ, कि मैं उस स्वार्थी और अधम चण्डपीडके साथ प्रेम और शुद्धताकी मूर्ति रेवासुन्दरीको विवाह करनेके लिए तैयार करनेमें दूतीका कार्य करूँ। क्यों ? मैं आपसे कहती हूँ, बार बार कहती हूँ, इसीलिए कहती हूँ कि आप मेरे पति हैं और आपके चरणोंमें मेरी भक्ति है, इस सारे काण्डमें आपका चित्र जितना नीच अंकित होगा उतना किसीका नहीं। चण्डपीड नीच देखनेपर भी बुद्धिमान् दिखेगा, चतुर माना जायगा, पर आपमें नीचताके अतिरिक्त मूर्खता भी दृष्टिगत होगी। आप उसके हाथकी कठपुतली जान पड़ेंगे, महासेनापति या महाबलाधिकृत नहीं। आप मुझे भी इस पापी षड्यंत्रमें घसीटना चाहते हैं। विन्ध्यबाला महाकोशलके महासेनापति, महाबलाधिकृतकी स्त्री, दूतीका कार्य करे और उससे यह कार्य करावे उसका पति! नाथ, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ, कि आप इस पदको छोड़ दीजिए। महाबलाधिकृतके नाते दुष्कर्म करनेकी अपेक्षा साधारण भट या चाटके नाते सत्कर्म करना कहीं अधिक महत्त्वका है।

[परदा गिरता है]

छठा दृश्य

स्थान—रेवासुन्दरीके कक्षकी दालान

समय—संध्या

[रेवा सुन्दरीका हाथमें तंबूरा लिए तथा दो दासियोंका 'शयन' लिए हुए प्रवेश।]

रेवा सुंदरी—हाँ, रखो यहाँ शयन। यहाँ बैठकर कुछ मनोरंजन करूँगी। भीतर तो इतनी ऊष्मा थी कि बैठ सकना कठिन था।

[दासिया शयन रख कर जाती और रेवा सुन्दरी शयनपर बैठ तंबूरा बजाकर गाना आरंभ करती है ।]

गान

रेवा, तेरा सुन्दर वाह !
बहा कठिन पर्वत पथसे यह परम पुनीत प्रवाह ।
सुगम पंथ सब पांथ खोजते, पर तूने तो खोज
दुर्गमसे दुर्गम मगकी की, अति अद्भुत तव ओज ।
चपल बालिका सम तू चलती कहीं चंचला चाल;
पर दो पग पश्चात् प्रौढ़ता गहती है तत्काल ।
दो ही डग चल कर तुरन्त ही तजती वह भी वेष,
युवती-वत् लुक-छिप इठलाती, कह तो क्या उद्देश !
इतनी मन्द कहीं मानों तू हुई परिश्रम-क्लान्त,
पर फिर विकट वेगसे बहती कुछ ही पद उपरान्त ।
क्या तू अपने क्लान्त गमनको मान सखेद प्रमाद
फिरसे वीर- वाहिनी होती, निज पौरुष कर याद ।
बने कहीं हैं कलित कुण्ड अति जिनके तटपर नित्य
वर वृक्षोंके सँग करती हैं ललित लताएँ नृत्य ।
अप–अण्डज-सारस, बक, चकवे, वन–विहंग बहुजाति
नर्तन यह गायन युत करते गा गा अगणित भाँति ।
गिरता कहीं प्रपात धूप सम उड़ते उसके बिन्दु,
ये ही रजतकणोंवत होते, जब उगता है इन्दु ।
धवल धवल चट्टानोंसे घिर धवल अमल जल-जाल
होता स्थिर सा यहाँ, मनो वह निर्मल मुकुर विशाल ।
ज्योत्स्नामें चट्टानों रूपी सिरको उठा सगर्व
कहता यह स्थल भूपर मुझमें स्वर्ग सुशोभित सर्व ।
सकल सरित, सरिसे है तुझको शोभा मिली अपार,
कारण एक–कठिन पथ तूने किया ससाहस पार ।

[विन्ध्यबालाका प्रवेश ।]

रेवा सुन्दरी—(विन्ध्यबालाको देख तंबूरा शयनके निकट रख खड़े होते हुए) आओ, सखि, कहो, तुम्हारा वह दूसरा गुप्तचर लौटा या नहीं ?

[दोनों शयनपर बैठ जाती हैं ।]

विन्ध्यबाला—हाँ, अभी अभी लौटा है और यह गुप्तचर उनका पता भी लगा लाया।

रेवा सुन्दरी—(उत्सुकतासे) अच्छा ! कहो, शीघ्र कहो, कहाँ हैं वे ? कुशल पूर्वक तो हैं न ?

विन्ध्यबाला—कुशलपूर्वक हैं और एक घने वनमें निवास कर रहे हैं।

रेवा सुन्दरी—(चिन्ताकुल हो) घने वनमें, हिंसक पशुओंके बीच अकेले !

विन्ध्यबाला—वनमें तो, उन्हें रहना ही पड़ता क्योंकि कहीं पता लग जाता कि अभी भी वे त्रिपुरी राज्यकी सीमामें हैं तो फिर उनका स्थान कारागृहमें होता, परन्तु वे अकेले नहीं हैं।

रेवा सुन्दरी—(कुछ शान्तिसे) तब कौन है उनके साथ।

विन्ध्यबाला—गोंड़। और इनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है।

रेवा सुन्दरी—(कुछ आश्चर्यसे) अच्छा !

विन्ध्यबाला—यह गुप्तचर बड़ा बुद्धिमान् सिद्ध हुआ। यहाँसे निष्कासनके पश्चात् वे कहाँ-कहाँ रहे, उन्होंने क्या क्या किया, कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, सारी बातोंका पता लगा कर लौटा है।

रेवा सुन्दरी—(उत्सुकतासे) सब बातें मुझे बताओगी न ?

विन्ध्यबाला—(मुसकराकर) अभी आयी ही इसीलिए हूँ। सुनो, यहाँसे जाकर पहले उन्होंने एक श्मशानमें अपना आसन जमाया !

रेवासुन्दरी—(अत्यन्त आश्चर्यसे) श्मशानमें !

विन्ध्यबाला—हाँ, श्मशानमें गोंड़ोंके आदि देव, हमारे इष्टदेव शिवजी ही हैं न; और शिवकी विहार-भूमि है श्मशान। श्मशान उन्हें इसलिए रुचा कि वहाँ कुलीन और अकुलीन सबकी एक गति है, कोई भेद भाव नहीं।

रेवा सुन्दरी—ओह !

विन्ध्यबाला—(मुसकरा कर) क्यों श्मशानके नाम और वर्णनसे भय लगता है क्या ?

रेवा सुन्दरी—(जल्दीसे) नहीं, नहीं, भय नहीं पर उनके समान कर्मण्यवीरका श्मशानमें निवास ! (कुछ रुककर) उस गुप्तचरने उन्हें श्मशानमें निवास करते देखा ?

विन्ध्यबाला—नहीं, परन्तु उनके चारों ओर अब जो गोंड़ इकट्ठे हो रहे हैं, उनमेंसे कई उनका सारा जीवन-वृत्तान्त जानते हैं। परस्पर प्रायः उसकी चर्चा भी किया करते हैं, जो उनके गर्वका विषय है। उन्हींकी इन चर्चाओंसे इस गुप्तचरको सारा पता लगा।

रेवा सुन्दरी—श्मशानमें निवास तो गर्वका विषय नहीं हो सकता।

विन्ध्यबाला—वह तो उनके हृदयपर जो ठेस पहुँचायी गयी उसकी प्रतिक्रिया थी। उसके पश्चात् उन्होंने जो कुछ किया वह है गर्वका विषय।

रेवा सुन्दरी—अच्छा !

विन्ध्यबाला—सखि, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि त्रिपुरी राज्य विदेशियोंका माण्डलीक हो गया है तब....तब उन्होंने क्या....क्या किया, यह सुनो ! उन्होंने सारे साधनोंसे विहीन रहनेपर भी मातृभूमिको स्वतंत्र करनेका संकल्प किया। संकल्प हुआ नर्मदाके तटपर नर्मदाका पवित्र

जल हाथमें ले कर। और इसक पश्चात् उन्होंने वनवासी गोंड़ोंमें भटक-भटक कर उन्हें यह कह-कह कर कि इस पुण्य भूमिके मूल निवासी तो तुम हो मातृभूमिके सारे सम्मानका प्रथम उत्तरदायित्त्व तो तुम-पर है, गोंड़ोंको जाग्रत करना आरंभ किया। न उन्हें शीतकी चिन्ता थी, न ऊष्माकी और न वृष्टिकी। न उन्हें मध्याह्नमें तवाके समान तपी हुई भूमिकी चिन्ता थी और न अंधेरी रातोंके हाथको हाथ न सूझनेवाले अन्धकारकी। न उन्हें वनके सिंह तथा भालुओंकी चिन्ता थी और न विषैले साँपोंकी। न उन्हें खानेकी चिन्ता थी और न वस्त्रकी। न उन्हें विश्रामकी चिन्ता थी और न निद्राकी। अनेक बार वर्षासे लथपथ वस्त्रों और कीचड़से घुटनों तथा कमर तक मग्न अवस्थामें लोगोंने उन्हें देखा है। कई बार चार-चार और-छै-छै दिन तक बिना एक दानापेटको मिले वे अपने कार्यके लिए घूमे हैं। अनेक बार बिना सोये और विश्राम लिए सप्ताहों तक उन्होंने कार्य किया है।

रेवा सुन्दरी—(आँखोंमें आँसू भर) ओह !....ओह !....और हम देशके परतंत्र होनेपर भी सारे सुखोंको भोगते हुए प्रासादोंमें निवास कर रही हैं।

विन्ध्यबाला—और उनके इस महान् प्रयत्नका फल भी निकला, राजकुमारी। इस देशके मूल निवासी गोंड़ सैकड़ों और सहस्रोंकी संख्यामें उनके चारों ओर जमा हो रहे हैं। इस समुदायके पास न पूरा खानेको है; न वस्त्र हैं और न गृह। वनके कन्द, मूल, फल तथा आखेट कर मांस खा वन-पशुओंके चर्मसे अंग ढाँक, वृक्षोंके नीचे निवास कर, वे अपना संघटन कर रहे हैं। जिन पत्थरोंमें लोह रहता है उनका लोह निकाल निकाल कर ये शस्त्र बना रहे हैं। लकड़ीका काम भी चला है—धनुष, बाण इत्यादि भी बन रहे हैं। जिस प्रकार

अनुयायी रहते, अपना शरीर ढाँकते और पेट भरते हैं उसी प्रकार वे भी । शारीरिक श्रममें भी वे अनुयायियोंके पीछे नहीं, आगेही रहते हैं। ऐसा महान् अनुष्ठान महाकोशलके इतिहासमें कदाचित् इसके पूर्व कभी नहीं हुआ । और इतनेपर भी कितने गुप्त रूपसे यह सब हो रहा है । केवल वीरता और कष्ट सहिष्णुता ही नहीं, कितनी पटुता है उनके कार्यमें ।

रेवा सुन्दरी—(गद्गद् स्वरसे) धन्य है, धन्य है, उन्हें धन्य है, विन्ध्यबाला ।

विन्ध्यबाला—और ऐसे व्यक्तिको ही वरण करनेका निश्चय करने वाली तुम्हें धन्य नहीं है ?

रेवा सुन्दरी—परन्तु कहाँ वे और कहाँ मैं सखि ! उनका जीवन कर्मण्य है, मेरा महा अकर्मण्य ! जब वे इतना कष्ट उठाकर किसी प्रकारके भी जोखिमकी चिन्ता न कर मातृभूमिके उद्धारका यह महान् आयोजन कर रहे हैं तब मैं त्रिपुरीके राजप्रासादमें निवास करती हुई सारे सुखोंको भोग रही हूँ ।

विन्ध्यबाला—हम जो कर सकती हैं उसे करनेकी एक योजनापर मैं विचार कर रही हूँ । हम भी अकर्मण्य नहीं बैठी रहेंगी ।

रेवा सुन्दरी—(उत्साह पूर्वक) अच्छा, क्या सोचा है, सखि !

विन्ध्यबाला—देखो, मुझे यह भी पता लगा है कि महामंत्रीजीको मण्डलाके राजा नागदेवने आश्रय दिया है और महामंत्रीजी तथा नागदेव यदुरायका पता लगा रहे हैं । सबसे पहले तो मैं यदुरायका पता उन्हें भिजवाती हूँ, जिससे वे यदुरायसे मिलें और इन सबकी सम्मिलित शक्ति मातृभूमिको स्वतंत्र करनेमें अग्रसर हो ।

रेवा सुन्दरी—(प्रसन्नतासे) ठीक ।

विन्ध्यबाला—इससे एक सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि अभी जो आयोजन यदुराय केवल गोंड़ोंका बना रहे हैं उसमें महामंत्रीजीके कारण सवर्ण आर्य भी सम्मिलित हो जाएँगे।

रेवा सुन्दरी—फिर तो कितनी शक्ति बढ़ जायगी इस आयोजनकी !

विन्ध्यबाला—निःसन्देह। और इसके पश्चात् उनके मण्डला आ जानेपर मैं किसी न किसी प्रकार उन्हें तुमसे मिलाऊँगी।

रेवा सुन्दरी—(उत्सुकतासे) ऐसा !

विन्ध्यबाला—हाँ, जो संवाद मिले हैं उनसे जान पड़ता है कि उनका हृदय कुलीनोंके प्रति घोर-घृणासे भरा हुआ है। उन्हें ज्ञात हो जाना चाहिए कि महाकोशलके कुलीनोंमें सर्वश्रेष्ठ कुलीनकी कन्याने उन्हें वरनेका निश्चय किया है। इससे कुलीनोंके प्रति उनकी घृणाका मूलोच्छेद ही न हो जायगा, वरन् तुम्हारी और उनकी भेंट होनेपर तुम्हें भी सन्तोष होगा और तुम्हारे निर्णयको कार्यरूपमें परिणत करनेकी दिशामें भी हम आगे बढ़ सकेंगी।

रेवा सुन्दरी—(विन्ध्यबालासे लिपट कर) किन....किन शब्दोंमें मैं तुम्हें साधुवाद दूँ, सखि।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

रेवा सुन्दरी—अच्छा, देखो, सन्ध्या हो रही है। चलो तो हम भगवान् भूतनाथसे प्रार्थना करें कि उनके और तुम्हारे दोनों आयोजन सफल हों।

विन्ध्यबाला—चलो ! प्रार्थनासे सचमुच हृदयको बल मिलता है।

[दोनोंका प्रस्थान। दो दासियाँ आकर शयन उठाकर ले जाती हैं।]

परदा उठता है।

सातवाँ दृश्य

स्थान—एक सघन वन

समय—संध्या

[तीन ओर ऊँचे ऊँचे वृक्ष दिखायी देते हैं। बीचका स्थल रिक्त है। इस खाली स्थानमें कई भट्टियाँ जल रही हैं। इनमें चर्मकी धौंकनियाँ लगी हैं। इन भट्टियोंमें किसीमें लोहा जलाया जा रहा है और किसीमें गरम कर करके शस्त्र बनाये जा रहे हैं—किसीमें खड्ग, किसीमें शल्य, किसीमें छुरिका, किसीमें बाणोंके फल इत्यादि। यहाँ वहाँ लकड़ीका काम भी हो रहा है। धनुष, बाण, शल्योंके डण्डे इत्यादि भी बन रहे हैं। बने हुए शस्त्रोंके ढेर भी दिखायी पड़ते हैं। सारा कार्य कर रहे हैं श्याम वर्णके गोंड़। इनमेंसे सभी अर्द्ध नग्न हैं। कोई पत्तेकी कोपीन लगाये है, कोई फटासा वस्त्र कटिमें लपेटे है और कोई चमड़ा। इन्हींमें यदुराय भी काम कर रहा है। वह भी कमरमें चमड़ा लपेटे हुए हैं। कैसा रूखा उसका शरीर हो गया है, कैसे बिखरे केश हैं और क्षौर विहीन मुख। श्रमके कारण पसीनेसे उसका सारा शरीर लथपथ है। सब लोग गा रहे हैं।]

गान

वीरो गाओ गौरव गान।
तलवारोंकी झंकारोंसे,
वीरोंकी रण हुंकारोंसे,
बहरा कर दो कुलाभिमान। वीरो०।
घिरें घटाएँ तीक्ष्ण शरोंकी,
वर्षा होवे मुण्ड करोंकी,
उनकेही शोणितमें डूबे,
उनके ऊँचे कुलकी शान। वीरो०।
नहीं शौर्यकुल धनका वासी,
विजय वधू वीरोंकी दासी,
प्रबल प्रहारोंसे करवायें
आज उन्हें इसका ही मान। वीरों०।

[सुरभी पाठक और नागदेवका प्रवेश। नागदेवकी अवस्था लगभग तीस वर्षकी है। वह श्यामवर्णका, ऊँचा-पूरा गठे हुए शरीरका व्यक्ति है। श्वेत अधोवस्त्र और उत्तरीय पहने है। सुवर्णके कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये हैं। लम्बे बाल, मूँछें और गलमुच्छे हैं। सिर नंगा है और पैरोंमें चर्मके जूते हैं।]

यदुराय—(इन्हें देख काम रोक खड़े हो आश्चर्यसे) कौन, महामंत्री-जी? मेरी आँखें तो धोखा नहीं खा रही हैं?

सुरभी पाठक—नहीं, सुरभी पाठक ही है, यदुराय।

यदुराय—पर आप यहाँ कहाँ?

सुरभी पाठक—तेरी शरणमें वत्स!

यदुराय—अकुलीन, निकृष्ट, पामर गोंड़की शरणमें कुलीन श्रेष्ठतम ब्राह्मण!

सुरभी पाठक—तू जानता है, यदुराय, मैं कुलीनों अकुलीनोंका भेद नहीं मानता और इसीलिए परमभट्टारकने मुझे पदच्युत कर बन्दी बनानेकी आज्ञा दी थी।

यदुराय—आपके पदच्युत हो कर आनेका वृत्त तो मेरे पास पहुँच चुका था, पर वह तो इसलिए कि आपने त्रिपुरीके माण्डलीक बनाये जानेका विरोध किया था।

सुरभी पाठक—नहीं, मेरे पदच्युत होने और बन्दी बनाये जानेकी आज्ञाका यह प्रधान कारण नहीं था।

यदुराय—तब?

सुरभी पाठक—उसका कारण था तुझे त्रिपुरीका महाबलाधिकृत बनानेका मेरा प्रस्ताव।

यदुराय—(आश्चर्यसे) अकुलीन निकृष्ट पामर गोंड़को त्रिपुरीके कुलीन शासकोंका महासेनापति!

सुरभी पाठक—हाँ, क्योंकि आज सारे महाकोशलमें तुझसे अधिक साहसी, तुझसे अधिक कर्मण्य अन्य कोई व्यक्ति नहीं है।

यदुराय—(गद्‌गद् स्वरसे) आप ऐसा मानते हैं?

सुरभी पाठक—ऐसा न मानता तो यहाँ तेरी शरण क्यों आता वत्स?

यदुराय—बार बार आप इतने बड़े शरण शब्दका उपयोग कर मुझे लज्जित क्यों कर रहे हैं, महाराज? आप जानते हैं सदा ही मेरी आपके प्रति श्रद्धा ही नहीं भक्ति रही है। (कुछ रुककर) और ये आपके साथ कौन हैं?

सुरभी पाठक—मण्डला नरेश नागदेव, जिन्होंने मुझे आश्रय दिया है। (कुछ रुककर) यदुराय, इस आश्रयके पश्चात्से ही हम लोग तेरी खोज कर रहे थे, पर आज हमें तेरा पता लग पाया वह भी अपने प्रयाससे नहीं, पर एक ऐसे मार्गसे जो फिर कभी तुझे बताऊँगा। अत्यधिक कठिनाईसे हम यहाँ पहुँचे हैं। तूने एकाकी होनेपर भी जिस वीरता, जिस कष्ट, जिस साहस, जिस सहिष्णुता, जिस परिश्रमसे मातृभूमिको पुनः स्वतंत्र करनेका यह आयोजन किया है और इतने बड़े आयोजनको जिस प्रकार गुप्त रखा है, वह महाकोशलके इतिहासमें ही नहीं सारे भारतवर्षके इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटना है। अब देशके उद्धारमें मण्डलाकी राजशक्ति और महाकोशलके सवर्णोंका बल भी तेरी सहायता करेगा।

यदुराय—(अत्यन्त गद्‌गद् स्वरसे) धन्य मेरा भाग्य! धन्य गुरुदेव!

[सुरभी पाठकके पैरोंपर गिर पड़ता है। सुरभी पाठक उसे उठाकर हृदयसे लगाता है।]

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राजप्रासादका सभा-कक्ष

समय—रात्रि

[सभा भवन वही है जो दूसरे अंकके पहले दृश्यमें था। विजयसिंह देव, चण्डपीड तथा सभी सामन्त और कुलपुत्र अपने अपने स्थानोंपर बैठे हैं। नर्तकियाँ नृत्य कर रही हैं। नृत्य पूरा होनेपर नर्तकियाँ जाती हैं। कुछ देर सन्नाटा रहता है।]

चण्डपीड—(खड़े होकर) परमभट्टारकने सुना ? उस राजद्रोही सुरभी पाठकने यदुरायको क्षत्रिय बनाया है और महाकोशलके महा-सेनापति पदपर उसका अभिषेक कराया है।

विजयसिंह देव—(आश्चर्यसे) अच्छा ?

चण्डपीड—साथ ही वे सात वस्तुऍं—चँवर, व्यजन, शंख, श्वेतछत्र, मुकुट, सिंहासन और शयन, जिनका उपयोग महाकोशलमें केवल परमभट्टारक ही कर सकते हैं और कोई क्षत्रिय तक नहीं कर सकता यदुरायको उपयोग करनेको दी गयी हैं।

विजयसिंह देव—ओहो ! इतनी बड़ी बात ?

चण्डपीड—और फिर यह सब अपने मण्डलाके माण्डलिक राजा नागदेव गोंड़के यहाँ हुआ है।

विजयसिंह देव—नागदेवका यह साहस ?

चण्डपीड—यह भी ज्ञात हुआ है कि यदुरायको जब निर्वासित किया गया तब पहले तो वह कुछ गोंड़ोंको इकट्ठा करता रहा और

फिर वह नागदेवके यहाँ गया और उसे गुप्त रूपसे उसीने आश्रय दे रखा था।

विजयसिंह देव—(सिर हिलाकर) हूँ।

चण्डपीड—एक बात और रही होगी। सुरभी पाठकका भी उससे गुप्त रूपसे पत्र-व्यवहार चलता होगा। सुरभी पाठक यहाँसे भाग सीधा मण्डला गया। वह भी वहाँ गुप्त रूपसे रहा, और, श्रीमान्, अभिषेकके समय ही सारा षड्यंत्र खुला।

विजयसिंह देव—तब तो, चण्डपीड, वह सुरभी पाठक धूर्तोंका अधिपति निकला।

चण्डपीड—मुझे तो उसपर बहुत दिनोंसे सन्देह था, महाराज, परन्तु वह श्रीमान्‌के पितामहके समयसे महामंत्री था, परमभट्टारकका भी उसपर बड़ा विश्वास था, इसलिए उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी कहनेका साहस न हुआ था।

विजयसिंह देव—विश्वासघातक !

चण्डपीड—(कुछ ठहरकर) महाराज, एक सबसे बुरी बात जो हुई वह यह है कि उस अभिषेकमें महाकोशलके प्रत्येक मुख्य स्थान और मुख्य समुदायके व्यक्ति उपस्थित थे। अभिषेकके पश्चात् सारे देशमें 'महाकोशलके महासेनापतिकी जय' 'महाकोशलकी जय'— ये वाक्य बोले जा रहे थे। सभी स्थानोंसे गुप्तचर आ आकर ये सूचनाएँ दे रहे हैं।

विजयसिंह देव—(विचलित होकर) तब तो बड़ी आपत्तिका समय आ गया ?

चण्डपीड—नहीं, श्रीमान्, आप तनिक भी चिन्ता न करें, आप अपने चित्तको प्रसन्न रखें। मेरे महामंत्री रहते हुए यदि महाराजको

कोई कष्ट हुआ तो मुझे धिक्कार है। मेरी तो इच्छा तक न थी कि इन बातोंको परमभट्टारकके कानों तक पहुँचाता, कई दिनों तक पहुँचायी भी नहीं, परन्तु जब बहुत अधिक चर्चा सुननेमें आने लगी तब महाराजको सूचना देना कर्तव्य हो गया। मैंने इसे ठीक करनेकी समस्त व्यवस्था कर ली है।

विजयसिंह देव—(उत्सुकतासे) क्या किया है, चण्डपीड ?

चण्डपीड—महाकोशलके सभी महापण्डितोंको बुलाकर एक व्यवस्था लिखायी है कि हिन्दू धर्मशास्त्रोंके अनुसार कोई भी शूद्र इस प्रकार द्विज नहीं बनाया जा सकता।

विजयसिंह देव—सत्य ही है।

चण्डपीड—वरन् जो द्विज किसी शूद्रको इस प्रकार द्विज बनाता है उसका द्विजत्व नष्ट हो वह स्वयं शूद्र हो जाता है।

विजयसिंह देव—अवश्य।

चण्डपीड—और वह द्विज तथा द्विज बननेवाला वह शूद्र, धर्मानुसार प्राण-दण्डके अधिकारी होते हैं।

विजयसिंह देव—(प्रसन्न होकर) वाह वाह, बुद्धिमानीकी पराकाष्ठा है! वाह! चण्डपीड, वाह! इस देशकी धर्मभीरु जनतापर जितना प्रभाव महाकोशलके पंडितोंकी इस व्यवस्थाका पड़ेगा उतना किसी बातका नहीं पड़ सकता। तुमने अच्छा सोचा।

चण्डपीड—और भी कई बातें की हैं श्रीमान्।

विजयसिंह देव—क्या क्या ?

चण्डपीड....महाकोशल देशके सभी प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सामन्तों, कुलपुत्रों, श्रेष्ठियों और व्यवसायियोंको बुलाकर उनसे एक वक्तव्य लिखवाया है।

विजयसिंह देव—वह क्या ?

चण्डपीड—वह यह, श्रीमान्, कि देशके सुख और शान्तिके लिए सुरभी पाठक, यदुराय और नागदेवका यह षड्यंत्र अत्यन्त घातक है, राजभक्ति हम महाकोशलवासियोंका प्रथम कर्तव्य है, अतः महाकोशलके लोग इन राजद्रोहियोंको किसी प्रकारकी सहायता न दें।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा !

चण्डपीड—और वह भी लिखवाया है कि जो सहायता देंगे उन्हें राज्यकी ओरसे जो कुछ भी दंड दिया जायगा वह उचित होगा।

विजयसिंह देव—वाह ! वाह ! वाह ! वाह ! ग्रामोंमें सामन्तों और कुलपुत्रोंकी जागीरोंके लोग कभी उनके विरुद्ध कुछ भी करनेका साहस नहीं कर सकते और नगरोंमें सभी श्रेष्ठियों और व्यापारियोंसे दबे रहते हैं, अतः यहाँ इनके विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

चण्डपीड—फिर, श्रीमान्, पण्डितोंकी इस धार्मिक व्यवस्था और सामन्त आदिके इस वक्तव्यकी अनेक प्रतिलिपियाँ करा कराकर नगर नगर और ग्राम ग्राममें दूतोंके हाथ भेज दी हैं। उन दूतोंको आज्ञा दे दी है कि वे प्रत्येक नगर और ग्रामके चतुष्पथोंपर डुग्गी पीट पीटकर लोगोंको एकत्रित कर इस व्यवस्था और वक्तव्यको पढ़कर सुना दें।

विजयसिंह देव—सर्वथा ठीक किया, अपढ़ भी सब जान जायँगे

चण्डपीड—गुप्तचरोंकी संख्या द्विगुण और चाटोंकी संख्या चतुर्गुण करनेकी भी आज्ञा दे दी गयी है।

विजयसिंह देव—ठीक।

चण्डपीड—उनकी वेतन-वृद्धि भी कर दी गयी है।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा किया।

चण्डपीड—और उन्हें यह भी आज्ञा दी गयी है कि जो कोई भी 'महाकोशलके महासेनापतिकी जय' अथवा 'महाकोशलकी जय' बोलता सुना जाय वह तत्काल बंदी किया जाय।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

चण्डपीड—यहाँ महादंडनायक और दंडकोंको भी आज्ञा दे दी है कि ऐसा कोई भी बंदी मुक्त न किया जाय और तत्काल दंडपाशिक और दण्डकके पास कारागृहमें भेज दिया जाय।

विजयसिंह देव— ठीक। इससे सारी प्रजा भयभीत होकर राज-द्रोहियोंका जयजयकार भूल जायगी।

चण्डपीड—चाटोंको यह आज्ञा भी दी है कि यदि कहीं भी इन राजद्रोहियोंका समुदाय देखें तो तत्काल बाण और गदाएँ चलाकर उस समुदायको भंग कर दें।

विजयसिंह देव—यह भी ठीक किया।

चण्डपीड—सेनामें भटोंकी वृद्धिकी आज्ञा भी दे दी है और मंडलापर आक्रमणकी तैयारीके लिए भी कह दिया है। बहुत शीघ्र मण्डलापर आक्रमण किया जायगा।

विजयसिंह देव—इसमें जहाँ तक हो बहुत शीघ्रता होनी चाहिए, जिसमें वे लोग अपना संघटन न करने पायँ।

चण्डपीड—बहुत शीघ्रता की जायगी, श्रीमान्, विश्वास रखें। एक बात और की है।

विजयसिंह देव—वह क्या ?

चण्डपीड—कुतुबुद्दीनको भी इसकी सूचनां कर दी है, जिससे समयपर यदि आवश्यकता हो तो वहाँसे भी सहायता मिल सके।

विजयसिंह देव—हाँ, हाँ, यह भी आवश्यक था। (कुछ ठहरकर) क्यों, चण्डपीड, सर्व साधारणमें राजद्रोहका इस प्रकार प्रचार और आन्दोलन इस देशके लिए नयी बात है । यहाँ तो राजभक्ति राजाज्ञाका प्रतिपालन ही सदा होता रहा है।

चण्डपीड—इसी लिए तो, श्रीमान्, इसके दमनके लिए नये उपायोंका आविष्कार करना पड़ा। जिस प्रकार ये राजद्रोही सर्व साधारणको अपनी ओर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, उसी प्रकार हम सर्वसाधारणको अपनी ओर करनेका यत्न करेंगे।

विजयसिंह देव—उचित ही है।

चण्डपीड—फिर हमारे हाथमें तो उन्हें दंड देनेकी सत्ता है, जो इन राजद्रोहियोंके पास नहीं है, अतः जो हमारी ओर नहीं होंगे उन्हें हम कठिन दण्ड देंगे।

विजयसिंह देव—हाँ, यह तो है ही।

चण्डपीड—इसी लिए तो मैंने परमभट्टारकसे निवेदन किया कि आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैंने तो पहले यहाँतक सोचा था कि जितने लोग उस अभिषेकमें गये थे उनका पता लगाकर उन्हें कठिन दण्ड दूँ, पर फिर यह सोचा कि कहीं उत्तेजना फैलकर विप्लव न हो जाय।

विजयसिंह देव—हाँ, हाँ, ये सब काय बहुत सावधानीसे होने चाहिए। निस्सन्देह तुम प्रशंसाके पात्र हो। एक नवीन परिस्थितिमें तुमने उसका सामना करनेके लिए इतने नवीन उपायोंका आविष्कार कर उन्हें कार्य रूपमें परिणत भी कर दिया। राजनीतिमें इसी विचक्षण बुद्धि और कार्यतत्परताकी तो आवश्यकता होती है। कहाँतक तुम्हारी प्रशंसा करूँ।

चण्डपीड—यह परमभट्टारककी कृपा है कि श्रीमान्‌के हृदयमें इस किंकरके प्रति इस प्रकारके भाव हैं। अब एक प्रार्थना महाराजसे है।

विजयसिंह देव—कहो, तत्काल कहो।

चण्डपीड—श्रीमान् इस बातका मुझे वचन दें कि आप इन सब बातोंकी तनिक भी चिन्ता अपने हृदयमें न रखेंगे और आपकी दिन-चर्य्या सदाके समान चलेगी। मैं यदि सुन भी पाऊँगा कि महाराजकी दिनचर्य्यामें रत्ती भर भी अन्तर हुआ है तो मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाऊँगा।

विजयसिंह देव—(उठकर चण्डपीडको हृदयसे लगाकर) आह ! चण्डपीड, तुम्हें मेरे सुखकी इतनी चिन्ता है !

चण्डपीड—मैं चाहता हूँ, परमभट्टारक, कि मुझे इतनी चिन्ता न रहे, पर करूँ क्या, मेरे हाथकी बात नहीं है। मेरा हृदय ही इस प्रकारका है।

विजयसिंह देव—(पुनः बैठते हुए) हाँ, एक आवश्यक बात तुमसे कहनी थी। महाधर्म्माध्यक्षने रेवासुन्दरीके विवाह और तुम्हारे अभिषेकका मुहूर्त निकाल लिया है। दोनों शुभ कार्य अक्षयतृतीयाको होंगे। यद्यपि अक्षयतृतीयाके अभी लगभग तीन मास हैं, परन्तु उसके पूर्व कोई अच्छा मुहूर्त ही नहीं है।

चण्डपीड—इन सब बातोंकी आप कोई चिन्ता न करें, श्रीमान्, शीघ्रताकी कोई आवश्यकता भी तो नहीं है।

[परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—नागदेवके प्रासादकी दालान

समय—तीसरा पहर

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है। भित्तिका रंग भिन्न है। यदुराय और नागदेवका प्रवेश। यदुरायका स्वरूप अब बदल गया है। सिरके बाल तथा मूँछें व्यवस्थित हैं! वह उत्तरीय एवं अधोवस्त्र धारण किये है और सुवर्णके आभूषण भी पहने है।]

यदुराय—देखा, मित्र, कुलीनोंकी कुलीनताको देखा? मेरे कुलीन बना लेनेसे कुलीन ब्राह्मण भी अकुलीन शूद्र हो गया! महाकोशलके महापण्डितोंने धर्मके अनुसार हम दोनोंको प्राण-दण्डकी व्यवस्था भी दे दी।

नागदेव—महान् आश्चर्यकी बात है, मित्र!

यदुराय—आश्चर्यकी तो कोई बात नहीं, राज-सत्ताने भय और लोभसे उन पण्डितोंको मोल ले लिया है।

नागदेव—तो कुलीन पण्डित भी क्रय-विक्रयकी सामग्री हैं?

यदुराय—पतित समाजकी पतित अवस्थाका यह नग्न चित्र है। जिस समाजका मस्तिष्क और शास्त्रीय ज्ञान मोल लिया जा सकता है, उस समाजके उद्धारकी बहुत कम सम्भावना रह जाती है।

नागदेव—परन्तु देशकी सर्वसाधारण जनता तो आज इन कुलीन पण्डितोंके साथ नहीं दिखती। पण्डितोंकी इस धर्म-व्यवस्था, और अकेली यह व्यवस्था ही नहीं, सामन्तों और श्रेष्ठियोंके वक्तव्य एवं राज्यकी ओरसे घोर दमन होनेपर भी, सारे देशमें तुम्हारा 'जय-जयकार' हो रहा है, वरन् जैसे जैसे यह दमन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे जय-घोष भी बढ़ रहा है। अत्यधिक वेतन देनेपर भी उन्हें चरों, चाटों और भटोंकी भरतीमें जितनी चाहिए उतनी सफलता नहीं

मिल रही है, और तुम्हारी सेनामें देशोद्धारके लिए अवैतनिक रूपसे भटोंके दलके दल आ रहे हैं।

यदुराय—इसीलिए तो मुझे देशोद्धारकी आशा है। मैं तो तुमसे यही कह रहा हूँ कि जिस समाजकी यह अवस्था हो जाती है उसके उद्धारकी सम्भावना नहीं रह जाती। इस कुलीन समाजके उत्कर्षकी मुझे बहुत कम सम्भावना दिखती है।

नागदेव—परन्तु, मित्र, तुम्हारी इस जय-जयकारमें कुलीन भी सम्मलित हैं। तुम्हारी सेनामें कुलीनोंकी भी बड़ी संख्या है। तुम कुलीनोंसे इतने अप्रसन्न हो गये हो कि उनकी अच्छी बातें भी तुम्हारी दृष्टिमें नहीं आ रही हैं।

यदुराय—हो सकता है, परन्तु, मित्र, उन कुलीनोंने कैसी, हेय दृष्टिसे मुझे देखा है, मेरा किस प्रकार अपमान किया है, मेरे कुलीन बन जानेपर भी किस प्रकारकी धर्म-व्यवस्था दी है—ये सब बातें क्या भूलनेकी वस्तुएँ हैं? फिर मैं तो भूल ही रहा था कि यह नयी धर्म-व्यवस्था निकल आयी। त्रिपुरीके राज-भवनमें बैठे बैठे जब तक ये कुलीन महाकोशलपर राज्य कर इस प्रकारकी नित-नयी बातोंको करते रहेंगे तबतक मेरा क्रोध कैसे शान्त होगा, बन्धु?

[सुरभी पाठकका प्रवेश]

सुरभी पाठक—(मुस्कराते हुए) कुलीन बननेपर भी कुलीनोंके ऊपरका क्रोध अबतक तुम्हारे हृदयसे नहीं जा रहा है, क्यों यदुराय?

यदुराय—(नमन करते हुए) ठीक कहते हैं, गुरुदेव, पर क्या कहूँ? यह क्रोध बहुत दूरतक शान्त हो गया था, पर धर्म्म-व्यवस्थाके पश्चात् वह क्योंकर शान्त रहता? प्रतिकारकी जो भावना बुझती जा रही थी वह पुनः प्रज्वलित हो उठी।

सुरभी पाठक—परन्तु, वत्स, तुम एक बात नहीं देखते।

यदुराय—क्या, गुरुदेव ?

सुरभी पाठक—जिस दिन तुम्हारे हाथों त्रिपुरीका उद्धार होगा उसी दिन आपसे आप अपनेको कुलीन कहनेवाले इन पतितोंका पतन और तुम्हारा उत्कर्ष हो जायगा। प्रश्न इन पतित कुलीनोंसे बदला लेनेका नहीं, पर देशको स्वतंत्र करनेका है।

यदुराय—मानता हूँ, गुरुदेव, और इस बातको समझता भी हूँ पर फिर भी क्या करूँ ?

सुरभी पाठक—(मुस्कराते हुए) हाँ, हाँ, अभी युवा-रक्त ही तो नाड़ियोंमें बह रहा है। प्रौढ़ और युवावस्थामें यही तो अन्तर है। अच्छा, सुनो, अभी सूचना आई थी कि त्रिपुरीसे सेना मण्डलापर आक्रमण करनेके लिए विदा हो गयी है।

यदुराय—(हर्षसे) अच्छा तो युद्धका समय आ गया? (नागदेवसे) मित्र, हम दोनोंके कारण तुमने इसे निमंत्रण दिया है।

नागदेव—फिर वही बात। इसका उत्तर मैं तुम्हें कई बार दे चुका हूँ।

सुरभी पाठक—अपनी सेना तैयार तो है ही ?

यदुराय—पूर्ण रीतिसे, गुरुदेव।

नागदेव—और विदेशियोंसे देशको स्वतंत्र करनेके लिए त्रिपुरीसे युद्ध, आपसका ही यह रक्त-पात, अनिवार्य भी है।

सुरभी पाठक—यही दीख पड़ता है !

यदुराय—तो फिर तैयारी कर राज्य-सीमापर प्रस्थान हो।

[तीनोंका प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—रेवा सुन्दरीका उद्यान

समय—सन्ध्या

[उद्यान पुराने ढँगसे सुन्दरतासे बना है। छोटी छोटी सड़कोंपर संगमर्मर और भाँति भाँतिके पत्थर लगे हैं। उनके आसपास क्यारियोंमें अनेक रंगके पुष्पोंसे युक्त पौधे और फिर ऊँचे ऊँचे वृक्ष दिखायी देते हैं। बीचमें छोटा-सा शिवालय है जिसके चारों ओर विल्व वृक्ष दिखायी पड़ते हैं। शिवालयके सामने एक कुण्ड है जिसमें कमलके पुष्प खिले हैं। कुण्डके निकट ही पत्थरकी अनेक छोटी-बड़ी आसंदियाँ रखी हैं। एकपर बैठी हुई रेवा सुन्दरी गा रही है।]

गान

मैं खोज रही अपना पथ
इस जगकी श्यामलतामें,
खो गयी किरण आलोकित
मनकी उस कोमलतामें।
अपना सब कुछ देकर ही
मिट जाय व्यथा इस मनकी,
बदलेमें कुछ पा जाऊँ
यह साधना हो जीवनकी।
अन्तरका ज्वार कुसुम बन
जा बिखरे उन चरणोंमें,
सब उपालम्भ गल जायें
इन नीर भरे नयनोंमें।

[विन्ध्यबालाका प्रवेश। विन्ध्यबालाको देख रेवा सुन्दरी उठकर उसकी ओर बढ़ती है।]

रेवा सुन्दरी—कहो, सखि, युद्धका क्या सम्वाद है ?

विन्ध्यबाला—यदुरायकी सेना त्रिपुरीकी सेनाको परास्त करती हुई बराबर आगे बढ़ रही है।

[दोनों आसंदियोंपर बैठ जाती हैं।]

रेवा सुन्दरी—तो कुलीन अकुलीनोंसे हार रहे हैं ? परमभट्टारक गांगेयदेव और कर्णदेवके वंशज गोंड़ोंसे परास्त हो रहे हैं ? इतना धन और व्यवस्थापूर्ण सेनाके रहते हुए त्रिपुरीपर मण्डलाकी जीत हो रही है ?

विन्ध्यबाला—ऐसी बात तो नहीं है, राजकुमारी, मण्डलाकी नहीं, समस्त महाकोशलकी सेना है, और वह सेना भी गोंड़ोंकी ही तो नहीं है, उसका बहुत भाग कुलीनों और क्षत्रियोंका है। यह कहो न कि देशके हृदयसे शरीर हार रहा है, मनसे धन परास्त हो रहा है, व्यवस्थामें धर्म एवं न्यायसे अधर्म और अन्यायकी पराजय हो रही है।

रेवा सुन्दरी—तुम जितना ठीक वर्णन कर सकती हो उतना मैं कहाँ कर सकती हूँ ? विन्ध्यबाला, मैं तो केवल ऊपरकी ही बात देखती हूँ, भीतरी बातका अवलोकन तो तुम कर सकती हो, सखि।

विन्ध्यबाला—धीरे धीरे तुम भी करने लगोगी, राजकुमारी। इस प्रकारके अवलोकनके लिए जैसे मनकी आवश्यकता है वह भगवानने तुम्हें भी दिया है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब तुम थोड़ा आजका अपना वृत्त तो बताओ। आहतोंकी सेवा-शुश्रूषामें कुछ आनन्द मिला ?

रेवा सुन्दरी—ऐसा, सखि, जैसा आजके पूर्व कभी न मिला था।

विन्ध्यबाला—अब इस युद्धके पश्चात् इसी प्रकार क्षुधित, दलित और रुग्णोंकी सेवा करना। देखना उसमें भी कितना सुख प्राप्त होता है। तुम्हारे भेद-नाशके मार्गपर चलनेकी ये भिन्न भिन्न वीथियाँ हैं।

रेवा सुन्दरी—मुझे तो तुम जो बताती जाओगी मैं वही करती

जाऊँगी। (कुछ ठहरकर) क्यों, विन्ध्यबाला, इस युद्धमें परमभट्टारकका क्या होगा ? कहीं उनके प्राणोंपर संकट न आ जाय, जब यह विचार मनमें उठता है, तब हृदय विदीर्ण होने लगता है।

विन्ध्यबाला—उनकी प्राण-रक्षाका भी उपाय सोच रही हूँ, राजकुमारी, भगवान् कोई न कोई उपाय सुझावेगा ही। (चारों ओर देखकर) अच्छा, अब अँधेरा हो चला है। आजके अँधेरेमें जो उजाला होनेवाला है वही अब तुम्हें बताती हूँ। यदुराय आज तुमसे भेंट करने आवेंगे।

रेवा सुन्दरी—(उत्सुकतासे) वे आवेंगे ?....वे आवेंगे ? तुम तो कहती थीं न कि त्रिपुरीको जीते बिना, त्रिपुरीमें पैर न रखनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा की है ?

विन्ध्यबाला—हाँ, सो तो की थी, परन्तु तुम्हारी निरन्तर बढ़ती हुई व्यथा, और दिनपर दिन होती हुई क्षीण एवं दुर्बल अवस्थाके कारण मैंने उन्हें समझाकर एक बार आनेको राजी कर लिया है।

रेवा सुन्दरी—कब और कहाँ आवेंगे ?

विन्ध्यबाला—कुछ अन्धकार होते ही उन्होंने इसी उद्यानमें आनेको कहा है।

रेवा सुन्दरी—यहाँ आनेमें उन्हें किसी प्रकारका भय तो नहीं है ?

विन्ध्यबाला—मैंने उसी सुरंगसे उनके आनेकी व्यवस्था की है जिसका द्वार तुमने मुझे बताया था और कहा था कि परमभट्टारक और तुम्हारे अतिरिक्त वह मार्ग किसीको ज्ञात नहीं है।

रेवा सुन्दरी—हाँ, तब तो कोई भय नहीं है। (कुछ ठहरकर) क्यों, विन्ध्यबाला, अब भी कुलीनोंके प्रति उनके हृदयमें वैसी ही घृणा, वैसा ही क्रोध है ?

विन्ध्यबाला—बीचमें कुछ कम हो गया था, पर जबसे महा-पण्डितोंकी वह धर्म-व्यवस्था निकली है तबसे फिर वही दशा हो गयी है। तुम्हारे प्रेम और उन्हें वरनेकी प्रतिज्ञाका वृत्त जाननेपर भी तुम्हारे पास आना तक उन्होंने बड़ी कठिनाईसे स्वीकार किया है।

रेवा सुन्दरी—क्या मुझसे भी वे अप्रसन्न हैं ?

विन्ध्यबाला—सो तो उन्होंने नहीं कहा, परन्तु तुम्हारे पास आनेकी कोई इच्छा भी उन्होंने प्रकट नहीं की।

रेवा सुन्दरी—इतनी निष्ठुरता !

[यदुरायका प्रवेश। वह सैनिक वेशमें है। शरीरपर कवच और सिरपर शिरस्त्राण है। आयुधोंसे भी सुसज्जित है। यदुरायके मुखपर गंभीरता छायी हुई है। यदुरायको देख रेवा सुन्दरी खड़ी हो जाती है और विन्ध्यबाला शीघ्रतासे चली जाती है।]

यदुराय—(आगे बढ़कर) यह अकुलीन यदुराय महाकोशलकी राजकुमारी रेवा सुन्दरीका अभिवादन करता है। (हाथ बाँधकर सिर झुकाता है।)

रेवा सुन्दरी—(सकुचाकर) क्या मुझसे भी आपको इस प्रकारका व्यवहार युक्ति-संगत दिखता है ?

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) पर आप भी कुलीन क्षत्रिय राज-कुमारी ही हैं ?

रेवा सुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) जन्म तो मेरा क्षत्रिय कुलमें हुआ है, इसे मैं क्यों अस्वीकृत कर सकती हूँ, परन्तु....

यदुराय—(कुछ उत्तेजित स्वरमें) किन्तु, परन्तु क्या राजकुमारी, क्या आपहीके पिताने मेरा तिरस्कार नहीं किया था ?

रेवा सुन्दरी—(डरते हुए) परन्तु, वीरवर, पिताके दोषकी भागिनी सन्तान किस प्रकार हो सकती है ?

यदुराय—(कुछ सोचकर) ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी।

रेवा सुन्दरी—ओह! आपके ऐसे निष्ठुर वचन!

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) इससे कहीं निष्ठुर वचनोंका प्रयोग आपके पिताने मेरे प्रति किया था।

रेवा सुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) उन वचनोंका जो प्रायश्चित मैं कर सकती थी उसे विन्ध्यबालाने आपको बतलाया ही है। (कुछ कहकर) भगवान जानते हैं कि आपके निर्वासनके पश्चात् यदि एक दिन भी मैंने रुचिसे भोजन किया हो, या एक रात्रि भी मैं सुखपूर्वक सोई होऊँ।

यदुराय—(निकट जाकर) क्या कलचुरि-राजकुलमें भी ऐसी देवी हो सकती है जो अकुलीनको अकुलीन न माने, उससे घृणा न करे?

रेवा सुन्दरी—(गद्गद स्वरसे) मैं अपने हृदयको चीरकर आपके सम्मुख किस प्रकार रक्खूँ? क्या विन्ध्यबालाने मेरी दशाके सम्बन्धमें आपसे कुछ नहीं कहा?

यदुराय—अवश्य कहा था, परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि इस राजवंशमें कोई ऐसा भी उत्पन्न हो सकता है।

रेवा सुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) फिर मेरा आपको विश्वास दिलाना कदाचित् सम्भव नहीं है। मेरा भाग्य ही ऐसा जान पड़ता है कि पिताका पाप और आपके वियोग-दुःख मुझे दुखी रक्खे, और जब आपके दर्शन हुए, तब आपके वचनों....(सिर झुका लेती है। नेत्रोंसे टपटप आँसू गिरते हैं।)

यदुराय—हैं! हैं! आप तो रोने लगीं। क्या सत्य ही मैंने आपके साथ अन्याय किया है? क्या सचमुच आप अपने कुलके समान नहीं

हैं ? क्या यथार्थमें आप मुझे हृदयसे चाहती हैं ? (घुटने टेककर) मुझे क्षमा करें, राजकुमारी। मैंने आवेशमें आकर बड़ी उदण्डता की है। आपने तो मुझे अपने प्रेम, अपने प्रणकी सूचना भिजवा, मुझे बुलवानेकी कृपा की और उसके परिवर्तनमें मेरा ऐसा दुष्य व्यवहार ! मैंने व्यर्थ ही आपको दुःख पहुँचाया है, कष्ट दिया है; मैं अपराधी हूँ; तुमसे क्षमा चाहता हूँ, रेवा सुन्दरी।

रेवा सुन्दरी—(यदुरायको उठाते हुए) यह आप क्या करते हैं, देव, आप तो मेरे हृदयके अधीश्वर हो गये हैं। आप मुझसे क्या क्षमा माँगते हैं ? मैं जानती हूँ आपके हृदयपर कुलीनोंने अत्यधिक चोट पहुँचाई है और इस समयके आपके वाक्य उस चोटके प्रतिघातस्वरूप निकले हैं। मुझे उनका कोई दुःख नहीं है। मुझे हर्ष है कि आपने अन्तमें मेरे सच्चे प्रेमको पहचान लिया। चलिए, उस आसंदीपर बैठिए।

[दोनों जाकर एक बड़ी आसंदीपर बैठ जाते हैं]

यदुराय—(फिर उस आसंदीको देख, चारों ओर दृष्टि घुमा तथा भौंहें चढ़ाकर) पर, राजकुमारी, मेरे निर्वासनके पश्चात् भी तो आप इसी राज्यमें रहीं न ? इसी राज्यके राज-प्रासादोंमें निवास और उद्यानमें विहार किया, क्यों ? (लम्बी साँस ले खड़ा होकर) आह ! मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक त्रिपुरीको जीत न लूँगा उसमें पैर न रक्खूँगा; फिर मैं यहाँ क्यों आया ? एक प्रमदाका प्रेम, एक नारीका नेह, फिर उसका प्रणय, जो उसकी कन्या है जिसने मेरा अपमान किया, मुझे तिरस्कृत कर निकाल दिया, मुझसे मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाकर आज मुझे यहाँ खींच लाया ! (रेवा सुन्दरीके निकट जा, जो अब खड़ी हो गयी है) यदि आप मुझे बहुत चाहती थीं, मेरे बिना यदि आपको भोजन अच्छा नहीं लगता था, नींद नहीं आती

थी, तो आप मुझसे वहीं मिलने क्यों नहीं आ गयीं, जहाँ मैं था? (जोरसे ठठाकर हँसता है।) यह सब प्रेमकी विडम्बना है। आपने मेरेलिए कौन-सा त्याग किया? कलचुरि-राजवंशमें प्रणय! बिना इसे विजय किये यहाँ एक क्षण भी चोरोंके समान ठहरना मेरे आत्म-सम्मान और मेरी प्रतिष्ठाके विरुद्ध है।

[शीघ्रतासे प्रस्थान। रेवा सुन्दरी रो पड़ती है। कुछ देर रोती रहती है।
चण्डपीडका प्रवेश।
उसे देखते ही रेवासुन्दरी आँखें पोंछ स्वस्थ हो खड़ी हो जाती है।]

चण्डपीड—अभी आप किससे बात कर रहीं थीं, राजकुमारी?

रेवा सुन्दरी—(चिढ़कर) आपको इससे प्रयोजन?

चण्डपीड—मुझे प्रयोजन! इसका क्या तात्पर्य? महाकोशलका महामात्य, भावी युवराज और आपके भावी पतिको इस राज्यकी छोटीसे छोटी बातसे भी प्रयोजन है।

रेवा सुन्दरी—(क्रोधसे) वाणीको थोड़ा वशमें रख बातचीत कीजिए।

चण्डपीड—(ठठाकर हँसकर) वाणीको वशमें रख बातचीत करनेसे आपका क्या अभिप्राय है? जो कुछ मैंने निवेदन किया उसका क्या एक अक्षर भी झूठ है?

रेवा सुन्दरी—(जोरसे) और चाहे कुछ झूठ न हो, पर अन्तिम वक्तव्य अवश्य झूठ है।

चण्डपीड—क्या आपको विदित नहीं कि परमभट्टारक यह निर्णय कर चुके हैं कि आपका विवाह मेरे साथ होगा। धर्माध्यक्षने अक्षय-तृतीयाको इस शुभ कार्यका मुहूर्त्त भी निकाल दिया है।

रेवा सुन्दरी—(सिर दूसरी ओर कर) परमभट्टारकने क्या निर्णय किया और क्या नहीं, यह तो मुझे विदित नहीं, परन्तु इस बातसे मेरा सम्बन्ध है, परमभट्टारकका नहीं।

चण्डपीड—जान पड़ता है लड़कियोंमें स्वेच्छाचारिता इस समय बढ़ती ही जा रही है। क्या मैं यह समझ लूँ कि कान्यकुब्जकी राजकुमारी संयोगिताने जिस प्रकार अपने पिताके प्रतिकूल काय कर सारे देशपर आपत्ति बुलायी उसी प्रकार आप भी परमभट्टारकी इच्छाके प्रतिकूल कार्य करेंगी ?

रेवा सुन्दरी—(जोरसे) मैंने आपसे कहा न कि परमभट्टारककी क्या इच्छा है, यह मैं नहीं जानती।

चण्डपीड—और जो मैंने कहा यदि वही इच्छा हो तो ?

रेवा सुन्दरी—(दृढ़तासे) तो उनकी इच्छा कभी पूर्ण न होगी।

चण्डपीड—यह आपका अन्तिम निर्णय है ?

रेवा सुन्दरी—(जोरसे) सर्वथा अन्तिम। जिस मनुष्यको मैं मनुष्य नहीं मानती वरन् पिशाच मानती हूँ, जिसके कार्यमें स्वार्थ और देश-द्रोह भरा है, उससे मैं विवाह करूँ, यह कल्पना तक करनेकी बात नहीं है! सूर्यका पूजक चिताकी अग्निका पूजक नहीं हो सकता। शुद्ध जलमें स्नान करनेवाला कीचड़में नहीं लोट सकता।

चण्डपीड—तो आप उससे विवाह करेंगी जो अभी आपका तिरस्कार करके गया है ? महाकोशलकी कुलीन क्षत्रिय राजकुमारी एक अकुलीन गोंड़को वरेगी ? क्यों ?

रेवा सुन्दरी—(चण्डपीडकी ओर फिर घूमकर) मैं क्या करूँगी और क्या नहीं, इससे आपको प्रयोजन नहीं है; और यदि सुनना ही चाहते हैं, तो सुनिए। जो मेरा तिरस्कार करके गया है उसका तिरस्कार भी मुझे शिरोधार्य है और तुम्हारे प्रेमको भी मैं दूरसे नमस्कार करती हूँ। इसका कारण है।

चण्डपीड—वह क्या ?

रेवा सुन्दरी—देशभक्त मनुष्य प्रकृति देवीकी सबसे महान् कृति होती है। वह किसी जातिका नहीं, पर स्वयं प्रकृति देवीका सुपूत होता है। जिसे तुम अकुलीन कहते हो उसने उसी देशको स्वतंत्र करनेका बीड़ा उठाया है जिसे तुमने विदेशियोंके हाथ बेच दिया है। थोड़ा उसे देखो और अपनेको देखो, थोड़ी उसके हृदयके साथ अपने हृदयकी तुलना करो, थोड़ा उसकी छविके साथ अपनी छविका सामंजस्य करो। उसमें शौर्य, त्याग और महत्ता है। तुममें षड्यंत्र, स्वार्थ और नीचता।

चण्डपीड—परन्तु वह तो उद्यानसे निकलते ही बन्दी कर लिया गया होगा। कारागृहमें होगा और प्रातःकाल ही सूलीपर चढ़ा दिया जायगा।

रेवा सुन्दरी—संसार-भरकी बुद्धिका ठेका तुम्हींने नहीं ले लिया है। दूसरोंमें भी थोड़ी बहुत बुद्धि है। जिस प्रकार सुरभी पाठकको तुम बन्दी नहीं कर सके उसी प्रकार उन्हें भी बन्दी करना सहज नहीं है।

चण्डपीड—(इधर उधर टहलकर रेवा सुन्दरीके सामने आ) राजकुमारी! राजकुमारी! क्यों आप अपना सुखी जीवन दुखी बनाती हैं? आपका विवाह यदुरायसे असम्भव है। यदि आप इच्छासे विवाह न करेंगी तो बलपूर्वक विवाह होगा। अतः अपने सुखके लिए ही आप यत्न करें कि आपका हृदय मुझसे प्रेम करने लगे।

रेवा सुन्दरी—(घृणासे) परोपकारकी तो आप मूर्त्ति हैं। हृदय भी कोई रथका चक्र है कि जिस ओर घुमाया उसी ओर चलने लगा? चलो, हटो दूर हो जाओ सामनेसे।

[रेवा सुन्दरीका शीघ्रतासे प्रस्थान। चण्डपीड देखता रह जाता है। परदा गिरता है]

चौथा दृश्य

स्थान—रेवा सुन्दरीके प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

विन्ध्यबाला—तो इस प्रकार उनसे और इस प्रकार चण्डपीडसे बातें हुईं ?

रेवा सुन्दरी—हाँ, और उनसे तो पूरी बातें ही न हो पायीं। बातोंके बीचमें ही वे इस प्रकार उत्तेजित हो शीघ्रतासे चले कि मुझे जान पड़ा मानों वे उद्यानके वृक्ष और लताओंको भी साथ लिये जा रहे हैं।

विन्ध्यबाला—पर मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदुराय जितना तुम्हें प्रेम करते हैं उतना संसारमें किसीको नहीं।

रेवा सुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) प्रेम ! मैं समझती हूँ उनके हृदयमें मेरा कोई प्रेम नहीं।

विन्ध्यबाला—कदापि नहीं, उनका अब भी तुमपर अत्यधिक प्रेम है।

रेवा सुन्दरी—इसका क्या प्रमाण है ?

विन्ध्यबाला—यदि यह न होता तो वे अपनी त्रिपुरी न आनेकी प्रतिज्ञा-भंग कर कदापि तुमसे मिलने न आते।

रेवा सुन्दरी—पर फिर उन्होंने इस प्रकार मेरा तिरस्कार क्यों किया ?

विन्ध्यबाला—उनके हृदयपर जो चोट पहुँची है वह बहुत अधिक है। वे भावुक व्यक्ति हैं, उसे भूल नहीं सके। उनके उस कठोर व्यवहारके भीतर भी उनका प्रेममय कोमल हृदय छिपा है। (कुछ सोचकर) उन्होंने तुमसे क्या कहा ?—“ आपने मेरे लिए कौन-सा त्याग किया है, राजकुमारी ? ”

रेवा सुन्दरी—हाँ, यह तो अवश्य कहा।

विन्ध्यबाला—और बात भी बहुत दूरतक सच है।

रेवा सुन्दरी—सच तो है।

विन्ध्यबाला—(कुछ सोचकर) अब हम लोग एक बहुत बड़ा कार्य करेंगी।

रेवा सुन्दरी—कौन-सा ?

विन्ध्यबाला—हमें भी युद्ध-क्षेत्रको चलना होगा और यदुरायका पक्ष लेना होगा। तुम परमभट्टारकके प्राण बचाना चाहती हो, तो उनके बचावका भी इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

रेवा सुन्दरी—(प्रसन्न होकर) वाह, सखि, वाह ! उपाय तो खूब सोचा।

विन्ध्यबाला—तुम्हारा साहस तो होता है न ?

रेवा सुन्दरी—इसमें कोई सन्देह है ? तुम तो जानती हो मेरा सेनाके कार्यमें सदा अनुराग रहा है, शस्त्र विद्यासे भी तुम्हारे समान मैं भी अपरिचित नहीं; और चण्डपीडको युद्ध-क्षेत्रमें दण्ड देनेका भी मुझे अवसर प्राप्त होगा।

विन्ध्यबाला—(मुस्कराकर) अब तुमपर शूरता चढ़ने लगी !

रेवा सुन्दरी—अब भी न चढ़ेगी ! (कुछ ठहरकर) अच्छा, यह तो बताओ कि तुमने मुझे यह क्यों नहीं बताया कि परमभट्टारक मेरा विवाह चण्डपीडसे करना निश्चित कर चुके हैं ?

विन्ध्यबाला—क्यों तुम्हें और दुखी करती ? जब समय आता बता देती, तथा बचावका कोई उपाय भी निर्धारित कर लेती। तो फिर अब आज्ञा ?

रेवा सुन्दरी—हाँ, एक बात और पूछनी थी। महासेनापतिजीको नहीं समझाया ?

विन्ध्यबाला—न जाने कितना समझाया।

रेवा सुन्दरी--पर कोई फल न हुआ; क्यों ?

विन्ध्यबाला--ना, पुनः समझाऊँगी।

रेवा सुन्दरी--(मुस्कराकर) आश्चर्य है कि इतनी बुद्धिमती पत्नीकी बात भी पति नहीं मानते ?

विन्ध्यबाला--पतिकी बात पत्नी माने यह इस देशका नियम है। पत्नीकी बात पति माने यह किस शास्त्र या स्मृतिमें लिखा है? (हँसने लगती है।)

[दोनोंका प्रस्थान। परदा गिरता है]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान--देवदत्तके भवनकी दालान

समय--रात्रि

[विन्ध्यबालाका गाते हुए प्रवेश]

गान

निशाके आर्द्र नयनका क्षार
बरसता अश्रु-बिन्दु नीहार।

हृदयके उच्छ्वासोंका भार
कँपाता-सा तारोंके हार।

लहर मानसमें उठी अधीर
बहा सन सन कर शून्य समीर।

दूरपर पूछ रहा अज्ञात
मार्गमें सन्ध्या है या प्रात ?

उठी ज्वाला जीवनके तीर
बुझा पावेगा लोचन-नीर ?

[देवदत्तका सैनिक वेशमें प्रवेश]

विन्ध्यबाला—(देवदत्तको देखकर) यह कैसा आश्चर्य है, नाथ, कि महाकोशलकी सेना पीछे हट रही है।

देवदत्त—उल्टी बात हो रही है, प्रिये, क्या कहूं। जब मण्डलाके अर्द्ध शिक्षित भट उत्साहसे जयजयकार करते हुए हमारे शिक्षित भटोंपर शस्त्र चलाते हैं, तब वे शस्त्र विद्युत्के समान हमारी सेनापर पड़ते हैं। हमारे भट उन्हें सहन न कर तितर-बितर हो जाते हैं।

विन्ध्यबाला—और आपके महासेनापति, महाबलाधिकृत होते हुए भी महाकोशलकी हार हो रही है?

देवदत्त—तुम तो मेरी हँसी उड़ाती हो।

विन्ध्यबाला—मैं आपकी हँसी कैसे उड़ा सकती हूँ? फिर ऐसे गम्भीर अवसरपर? आप जब महासेनापति हुए उस समय आपने कहा था न कि आप उस पदके योग्य हैं। मैंने आपकी अयोग्यताका उसी समय बोध करा दिया था, आपको उस पदको छोड़ देनेके लिए भी कहा था, पर आपने मेरी प्रार्थना न मानी।

देवदत्त—परन्तु, अब तो महामंत्रीजी भी युद्धमें लगे हुए हैं। सारा उत्तरदायित्व अकेले मुझपर नहीं है। एक प्रकारसे तो यह भी कहा जा सकता है कि महासेनापतिका कार्य वे ही कर रहे हैं और मैं केवल उनकी आज्ञाओंका पालन।

विन्ध्यबाला—वे तो महान् बुद्धिमान् हैं। आप कहते ही हैं कि महाकोशल राज्य भरमें वैसा बुद्धिमान् दूसरा मनुष्य नहीं है; इतने पर भी आपकी सेना हार रही है?

देवदत्त—हाँ, हो तो यही रहा है। मैंने कहा न, उल्टी बात हो रही है।

विन्ध्यबाला—उल्टी बात मुझे तो नहीं दिखती।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—आपकी सेनाका हृदय युद्धमें नहीं है। संसारका कोई भी युद्ध बिना किसी विशेष और महान् उद्देश्यके नहीं लड़ा जा सकता। इसीलिए इतिहासमें अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जहाँ छोटी छोटी सेनाओंने बड़ी बड़ी सेनाओंपर विजय प्राप्त की है।

देवदत्त—तब क्या किया जाय ? इस प्रकारका कोई उद्देश्य उत्पन्न करना चाहिए।

विन्ध्यबाला—यह कोई अस्वाभाविक रीतिसे निर्माण करनेकी वस्तु नहीं है। आपकी सेनाका उद्देश्य केवल राजवंशकी रक्षा करना है, पर यदुरायकी सेनाका उद्देश्य उससे कहीं महान् है।

देवदत्त—क्या ?

विन्ध्यबाला—देशकी स्वतंत्रता। फिर आपकी ओरसे एक भूलके पश्चात् दूसरी भूल हुई है।

देवदत्त—कैसी भूल ?

विन्ध्यबाला—(अँगुलीपर बताते हुए) प्रथम यदुरायको निकाला गया, जिसपर सभी भटोंका भी अत्यधिक प्रेम है, और उसी यदुरायसे फिर उन्हें युद्ध करना पड़ रहा है। फिर महामंत्रीजीको निकाला गया, जिन्हें सारा राज्य प्राणोंसे अधिक चाहता था, और जो यदुरायके साथ हैं। फिर कुतुबुद्दीनका माण्डलिक बना गया, जिससे सभी अप्रसन्न हो गये। फिर यदुरायके पक्षको दबानेके लिए घोर दमन किया गया, जिससे सब चिढ़ गये। और अन्तमें मण्डलाके आक्रमणक मार्ग न देख स्वयं मण्डलापर आक्रमण किया गया।

देवदत्त—(सोचते हुए) हाँ, हुआ तो यही, प्रिये।

विन्ध्यबाला—इसका फल मिलेगा ही। जो कुछ किया जाता है उसका फल अवश्यमेव मिलता है। सारे राज्य और सेनाकी सहानुभूति यदुरायके साथ है। आपकी हार तो निश्चित है। चण्डपीड बुद्धिमान् अवश्य है, परन्तु उसकी बुद्धि छोटे छोटे षड्यंत्रों तक ही परिमित है, महान् कार्योंके योग्य नहीं।

देवदत्त—तब अब करना क्या?

विन्ध्यबाला—आपकी विजयके लिए?

देवदत्त—और किसलिए?

विन्ध्यबाला—आपकी विजय असम्भव है। पर, हाँ, आपके लिए मार्ग अवश्य है।

देवदत्त—वह क्या?

विन्ध्यबाला—यदि आप चाहें तो अब भी आपकी कीर्ति देशमें फैल सकती है। आपका नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जा सकता है।

देवदत्त—किस प्रकार?

विन्ध्यबाला—जब त्रिपुरीकी सीमापर युद्ध हो, उस समय आप सेनासे कह दें कि अब तक भूल हुई, पर अब भी भूलको सुधारनेका समय है। यदुरायका पक्ष न्यायपर स्थित है। वह देशको विदेशियोंसे स्वतंत्र रखना चाहता है, इसलिए सेना हट जाये, उससे युद्ध न करे। यदि आप ऐसा कह देंगे तो कमसे कम त्रिपुरीमें रक्त-पात न होगा, परमभट्टारकके भी प्राण बच जायँगे और फिर त्रिपुरीका कुतुबुद्दीनके साथ जब युद्ध होगा उस समय आपको भी देशकी ओरसे विदेशियोंके साथ युद्ध करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जावेगा।

देवदत्त—(चिल्लाकर) क्या कहती हो, विन्ध्यबाला, क्या कहती हो? यह कभी होनेकी बात है? चण्डपीडकी आज्ञाके सम्मुख मेरी ऐसी आज्ञा कोई मानेगा?

विन्ध्यबाला—मुझे विश्वास है कि इस सम्बन्धमें भटगण चण्ड-पीडकी नहीं पर आपकी आज्ञा मानेंगे।

देवदत्त—(सोचकर) सौ बातकी एक बात यह है कि मुझसे यह न होगा।

विन्ध्यबाला—(ध्यानसे उसकी ओर देखकर) न होगा ? अंतिम निर्णय है ?

देवदत्त—(जल्दीसे) अन्तिम।

विन्ध्यबाला—(कुछ सोचकर) हाँ, मुझे भी अब तो ऐसा ही जान पड़ता है। अच्छा, नाथ, तो फिर पत्नी पतिके पापका प्रायश्चित्त करेगी। महाकोशलको विदेशियोंके हाथ बेचनेवालोंका पक्ष ले आपने जो युद्ध किया है उसका प्रायश्चित्त मैं करूँगी। आपकी अर्धांगिनीके नाते इस मर्त्यलोकमें आपका कलंक धोऊँगी और परलोकमें आपको नरकमें न गिरने देकर स्वर्गमें खींच ले जाऊँगी। अब आपसे रण-क्षेत्रपर ही भेंट होगी। (शीघ्रतासे प्रस्थान)

देवदत्त—विन्ध्यबाला ! विन्ध्यबाला ! आह ! विन्ध्यबाला !

[पीछे पीछे जाता है। परदा उठता है।]

छठा दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राज-प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[विजयसिंह देव और चण्डपीड दो आसंदियोंपर बैठे हैं। चण्डपीड सैनिक वेशमें]

विजयसिंह देव—(लम्बी साँस लेकर) कल त्रिपुरीपर शत्रुओंका आक्रमण होगा। पर तुम क्या करो ? तुम तो दिन-रात जो कुछ तुमसे होता है, करते ही हो। कवच और शस्त्र तक नहीं उतारते।

चण्डपीड—हाँ, श्रीमान्, परन्तु अब भी मैं निराश नहीं हूँ। परमभट्टारकसे भी प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमान् भी चिंतित न हों।

विजयसिंह देव—यह कैसे, चण्डपीड ?

चण्डपीड—सूचना आ गयी है कि कुतुबुद्दीन ऐबकने हम लोगोंकी सहायताके लिए सेना बिदा कर दी है, जो कलतक अवश्य आ जायगी।

विजयसिंह देव—और वह कलतक न आयी तो ?

चण्डपीड—इसीलिए तो कल रण-क्षेत्रपर श्रीमान्‌को ले चल रहा हूँ। यदि वह सेना न भी आयी तो भी परमभट्टारकके दर्शन करते ही यदुरायके भट सहम उठेंगे।

विजयसिंह देव—अच्छा !

चण्डपीड—वे भी तो महाकोशलके निवासी हैं न। जब महाकोशलके अधिपतिको देखेंगे तब हमारी सेनापर उनके हाथ नहीं उठेंगे।

विजयसिंह देव—(कुछ सोचते हुए लम्बी साँस लेकर) पर, चण्डपीड, न जाने क्यों अब मेरे हृदयमें विजयकी बहुत कम आशा है।

चण्डपीड—इस प्रकारके भाव अनेक बार हृदयमें उठते हैं, महाराज, पर उनका सदा दमन करना चाहिए। मैं श्रीमान्‌से पुनः प्रार्थना करता हूँ कि परमभट्टारक चिंतित न हों। आपका और आपके पूर्वजोंका पुण्य-प्रताप ही ऐसा है कि त्रिपुरीका पतन होना असम्भव है। चलिए, महाराज, अभी तो सभाभवनमें पधारिए। आज पूर्वकी नर्तकियोंका गायन है। और जब श्रीमान् कल रणक्षेत्रपर पधारें तब पूर्ण आशापूर्ण उत्साहके साथ, क्योंकि सबसे बड़ी निर्बलता निर्बलताका प्रदर्शन है।

[दोनोंका प्रस्थान। दो दास आकर आसंदियाँ उठाकर ले जाते हैं। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—त्रिपुरी नगरकी सीमापर युद्ध-क्षेत्र

समय—सन्ध्या

[इधर उधर कई लाशें और मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके कटे अंग पड़े हैं । रथके चके और कई भाग भी टूटे पड़े हैं । बहुत-से आयुध भी बिखरे हैं । सन्ध्याके प्रकाशसे सारा दृश्य प्रकाशित है । एक ओरसे चण्ड-पीड और देवदत्तका कुछ सैनिकोंके साथ शीघ्रतासे प्रवेश । सैनिकोंमें अनेक सैनिक एक साथ ही कह रहे हैं ' यह यदुराय है ' ' कहाँ है यदुराय ? ' यही ' यदुराय है,' । दूसरी ओरसे अकेले यदुरायका प्रवेश । सभी लोग शरीरपर कवच और सिरपर शिरस्त्राण और आयुधोंसे सुस-ज्जित हैं ।]

चण्डपीड—(यदुरायको देख सैनिकोंको ललकार कर) यह लो, यह यदुराय है । घेर लो, इसे । जाने न पाये । बड़ी कठिनाईसे हाथ लगा है ।

यदुराय—मैं भागनेवाला नहीं । शत्रु सेनाको मारते और चीरते हुए थोड़ा अधिक आगे बढ़ आया, इसीसे तुम दुष्टोंको यह अवसर मिल गया । पर कोई हानि नहीं, अकेला ही तुम सबोंके लिये पर्याप्त हूँ ।

[सब सैनिक यदुरायको घेर एक साथ प्रहार करते हैं । वह अकेला सबसे युद्ध करता है, और शनैः शनैः अनेक सैनिकोंको मारता है । शेष भाग जाते हैं । अब चण्डपीड और देवदत्त यदुरायसे युद्ध करते हैं । रेवा सुन्दरी और विन्ध्यबालाका प्रवेश । दोनोंके हाथमें शस्त्र हैं ।]

देवदत्त—(विन्ध्यबालाको देखकर और चिल्लाकर) ओह ! विन्ध्य-बाला ! विन्ध्यबाला ! अन्तमें तुम आ ही गयीं ?

[देवदत्त काँपने लगता है । उसके हाथकी ढाल छूटकर गिर पड़ती है । उसी समय यदुरायका खड्ग कवचको तोड़ता हुआ जोरसे उसकी गरदनपर पड़ता है । देवदत्त धराशायी होता है । विन्ध्यबाला दौड़कर उसका शव गोदमें उठा लेती है । रेवा सुन्दरी चण्डपीडपर शल्य चलाती

है। वह यदुरायके आघातोंको बचा रहा है, अतः रेवा सुन्दरीके शल्यको नहीं बचा पाता, वह जोरसे कवचको तोड़ते हुए उसके वक्षःस्थलको छेद देता है और वह भी धराशायी हो जाता है। विजयसिंहदेव का प्रवेश। यदुराय उनकी ओर बढ़ता है।]

रेवा सुन्दरी—(बीचमें आकर) प्राणेश, ये मेरे पिता हैं, प्यारे पिता!

[सुरभी पाठकका प्रवेश।]

सुरभी पाठक—बस यदुराय, वीरवर यदुराय, विजयी यदुराय, बस।

[यदुराय रुक जाता है।]

यवनिका

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राज-प्रासादकी दालान

समय—प्रातःकाल

[यदुराय और नागदेव दो आसंदियोंपर बैठे हैं।]

नागदेव—कहो, मित्र, अब तो कुलीनोंपरका क्रोध शांत हुआ ?

यदुराय—सर्वथा। चण्डपीडके वध, परमभट्टारक विजयसिंहके बन्दी तथा त्रिपुरीके विजय होनेपर क्रोध दूर न होता तो कब होता ?

नागदेव—परन्तु अब भी तुम सुखी नहीं दीखते ?

यदुराय—मुझे सुख कदाचित् इस जीवनमें मिलना सम्भव नहीं है।

नागदेव—(उदास होकर) यह क्यों, मित्र ?

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) अब मुझे अपने ऊपर ही ग्लानि आने लगी है।

नागदेव—अच्छा, तुमने तो ऐसा कोई काम नहीं किया ?

यदुराय— किया है, मित्र किया है। इस क्रोध और प्रतिकारके आवेशमें आकर कुछ ऐसी बातें कर डाली हैं कि वे अब निरन्तर मेरे नेत्रोंके सम्मुख घूमती रहती हैं, मुझे सुखी नहीं होने देतीं।

नागदेव—कैसी, मित्र ?

यदुराय—तुम जानते हो, युद्धके पूर्व और युद्धके समय रेवा सुन्दरीकी ओरसे कई बार विन्ध्यबाला मेरे निकट आयीं थीं ?

नागदेव—आयी थीं, जानता हूँ।

यदुराय—और यह भी जानते हो कि एक दिन उनके विशेष आग्रहके कारण मैं रेवा सुन्दरीसे मिलने उनके उद्यानमें गया था ?

नागदेव—हाँ, यह जानता हूँ, वहाँ जो कुछ हुआ था, वह भी तुमने मुझे बताया था।

यदुराय—मैंने उस दिन रेवा सुन्दरीके साथ ऐसा व्यवहार किया जो किसी भी उच्च हृदय मनुष्यके लिए नीच व्यवहार कहा जायगा।

नागदेव—मैंने तो उसी दिन तुमसे यह बात कही थी, परन्तु तुमने नहीं माना।

यदुराय—आज मानता हूँ। मैं उस दिन कुलीनोंपर इतना क्रुद्ध था, उनसे बदला लेनेकी भावना हृदयमें इतनी प्रबल थी, कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। अब जब उस बातका स्मरण करता हूँ तब हृदयपर साँप-सा लोट जाता है। यद्यपि रेवासुन्दरी इसी प्रासादमें हैं पर उनके समीप जाने तकका साहस नहीं होता।

नागदेव—यह उनके साथ अब दूसरा, उससे भी बड़ा, अन्याय हो रहा है।

यदुराय—यह भी जानता हूँ, पर मुझे रेवा सुन्दरीको अपना मुख दिखानेमें लज्जा आती है। एक यही बात तो नहीं, मैंने अपनी नीचताके और भी परिचय दिये हैं।

नागदेव—कौनसे, मित्र ?

यदुराय—अंतिम युद्धके दिन जब चण्डपीडके वधके उपरान्त विजयसिंह देव युद्धक्षेत्रपर आये तब क्रोध और प्रतिकारके वशीभूत हो मैं उनपर भी प्रहार करनेको अग्रसर हुआ था। वह तो रेवासुन्दरी बीचमें आ गयीं और उसी समय गुरुदेव आ गये, नहीं तो एक और अनर्थ हो जाता।

नागदेव—हाँ, सारे पापोंका मूल तो चण्डपीड था। उसका वध हो चुका था।

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) फिर इन सबसे कहीं बुरी एक और बात मेरे द्वारा हो गयी!

नागदेव—वह क्या ?

यदुराय—(फिर लम्बी साँस लेकर) जिस विन्ध्यबालाने मेरा पता तुम्हें और गुरुदेवको हम लोगोंका दिलवा सम्मिलन कराया, जो हमारे इस स्वतंत्रताके सारे आयोजनका सबसे बड़ा साधन सिद्ध हुआ, उसी विन्ध्यबालाके पति देवदत्तका मेरे ही हाथों निधन हुआ।

नागदेव—परन्तु, मित्र, वह तो युद्धका अवसर था। चण्डपीड और वह दोनों ही तुमपर आक्रमण कर रहे थे। चण्डपीडके साथ वह भी युद्धमें मारा गया।

यदुराय—मानता हूँ, परन्तु विन्ध्यबालाके कारण मुझे देवदत्तका विशेष ध्यान रखना चाहिए था। मित्र, तुम विन्ध्यबालाको अच्छी तरह नहीं पहचानते। उसे तो मैं आजीवन अपना मुख न दिखा सकूँगा।

[विधवा विन्ध्यबालाका प्रवेश। वह सिरसे पैर तक एक श्वेतवस्त्र धारण किये हुए है। कोई आभूषण नहीं है। कमरमें एक खड्ग बँधा हुआ है। नेत्रोंमें अश्रु हैं।]

विन्ध्यबाला—आप मुझे मुख न दिखाएँगे तो मैं आपके दर्शनार्थ आयी हूँ, वीरवर। (विन्ध्यबालाको देख यदुराय और नागदेव खड़े हो जाते हैं।) आप क्यों मेरे लिए दुखी होते हैं! मेरे प्राणेशके निधनमें आपका नहीं, मेरा दोष है। यदि मैं उस दिन युद्ध-क्षेत्रमें न आती, और....और उनकी भावुकताके कारण ढाल उनके हाथोंसे छूटकर

न गिर जाती, तो कदाचित् उनके प्राण बच जाते। पर उस सारे दृश्यको आप भूल जाइए। मैं आपको वैसा ही समझती हूँ, ठीक वैसा ही। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, मेरे हृदयमें आपके लिए कोई क्रोध, कोई घृणा, कोई बुरी भावना नहीं हैं।

यदुराय—(आँखोंमें आँसूभर काँपते हुए गद्गद् स्वरमें) देखा, मित्र, देखा। यह विन्ध्यबालाकी महत्ता है, यह नारी-हृदयकी उच्चता और उदारता है! इस क्षमामें जो महत्ता है, जो औदार्य है, वह क्रोध और प्रतिकारमें कहाँ? प्रतिहिंसा हिंसापर ही आघात कर सकती हैं, उदारतापर नहीं। आज मुझे इस ज्ञानका अनुभव हो रहा है। (विन्ध्यबालासे) देवी, आप सचमुच मानवी नहीं, देवी हैं। यह यदुराय आपके सम्मुख अपनेको छोटा....बहुत छोटा पाता है। (विन्ध्यबालाके पैरोंपर गिर पड़ता है।)

विन्ध्यबाला—(यदुरायको उठाते हुए) वीरवर, आप क्या कह रहे हैं? क्या कर रहे हैं? परन्तु नहीं, मुझे इस बातका हर्ष है कि आपने क्षमाको पहचान अपने एक महान् दोषको दूरकर दिया। आपकी अपूर्व वीरताके संग क्षमाका संयोग सुवर्णके संग सुगंधके संयोगके समान है। अच्छा आप मेरी सखिके पास चलिए। उसे आपने बड़ा कष्ट दिया है।

यदुराय—अच्छा, वहाँ भी मुझे अपनी लघुता स्वीकार करनेके लिए अभी चलना होगा?

विन्ध्यबाला—अवश्य, क्या उसे और कष्ट देनेकी इच्छा है? अभी, तत्काल चलना होगा, क्योंकि फिर हम सभीको सीमापर प्रस्थान करना है। आपने सुना नहीं, कुतुबुद्दीन ऐबककी सेना महाकोशलकी

आर बिदा हो गयी है। देशकी स्वतंत्रताका सच्चा संग्राम होना तो अभी बाकी ही है।

यदुराय—अच्छा, कुतुबुद्दीनकी सेना आ रही है ?

विन्ध्यबाला—हाँ, मैं अभी सुनकर आयी हूँ। महामंत्रीजीके पास गुप्तचर अभी संवाद लाये हैं। (कुछ ठहरकर) तो फिर चलिए, शीघ्र ही मेरी सखीके तप्त हृदयको शान्त कीजिए।

[एक ओर यदुराय और विन्ध्यबाला तथा दूसरी ओर नागदेवका प्रस्थान। दो दास आकर आसंदियाँ उठाकर ले जाते हैं। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—एक जंगली मार्ग

समय—सन्ध्या

[मुसलमानोंके दो सिपहसालार और कई सैनिक खड़े हैं। सभी सैनिक वेशमें हैं और उसी प्रकारके कवच एवं आयुध धारण किये हैं जैसे हिन्दू सैनिकोंके थे ! सबके दाढ़ी है।]

एक सिपहसालार—इन गोंड़ोंने तो गज़ब कर डाला !

दूसरा सिपहसालार—इतने दिनों तक जंग! नाकों दम हो गया।

पहिला सिपहसालार—ताज्जुबकी बात है। न तो इनके पास जंगके पूरे कपड़े हैं और न हथियार। फिर भी इनमें हिन्दोस्तानके बादशाहसे जंग करनेकी यह हिम्मत !

दूसरा सिपहसालार—पर बात तो यह है कि गोंड़ोंके साथ दूसरी क़ौमें भी शामिल हैं।

पहला सिपहसालार—फिर यह भी सुना जाता है कि इनके सब सिपाहियोंको तनख्वाह नहीं मिलती ! लूटपाट भी नहीं ! मुफ्तमें जान देनेको फ़ौजमें भरती होते हैं !

दूसरा सिपहसालार—औरतें तक मदद करती हैं, जनाब ! उस रेवा सुन्दरी और विन्ध्यबालाका क़िस्सा नहीं सुना है? दिन-रात घूम घूम कर जंगके लिए आदमी और सोना-चाँदी इकट्ठा करती हैं । उन्हें देख औरतें तक अपने ज़ेवरात उतारकर जंगके खर्चके लिए दे देतीं हैं । फिर वे जंगमें खुद लड़ती हैं, घायलोंकी खि़दमत करती हैं !

पहला सिपहसालार—दिल्लीसे त्रिपुरीकी मदद करने आये थे और लेनेके देने पड़ गये । पर आज जो ख़त आया वह आपने तो देखा ही है । गोरमें शहाबुद्दीनके इन्तकाल फ़रमानेसे अब दिल्लीमें भी बलवेके अंज़ाम दिखायी दे रहे हैं, अब तो शायद वहाँसे लौटनेका हुक्म आ जाय ।

दूसरा सिपहसालार—जितना लश्कर यहाँ है उससे तो इन शैतानों-पर फ़तह हासिल करना भी मुश्किल मालूम होता है ।

पहला सिपहसालार—हिन्दोस्तानमें कहीं भी ऐसा जंग नहीं करना पड़ा । सचमुचमें गोंड़ आफ़तके परकाले निकाले ।

दूसरा सिपहसालार—पर हम तो सिर्फ़ त्रिपुरीके राजाकी मददको आये थे, क्योंकि उसने हमारे बादशाहसे सुलह कर ली थी । जब उसने इन गोंड़ोंसे हार मान ली तब हमारी बलासे ।

पहला सिपहसालार—हाँ, हम क्यों मरें-कटें ?

दूसरा सिपहसालार—मुझे यक़ीन है कि दिल्लीसे जल्दी ही हमारे लौटनेका हुक्म आयेगा ।

एक सिपाही—हुजूर मुआफ़ करें तो एक बात अर्ज़ करूँ ?

पहिला सिपहसालार—हाँ, हाँ, जरूर।

वही सिपाही—इनका सिपहसालार जो यदुराय है, सुनते हैं, उसको हिन्दुओंके एक खुदा भैरवने पैदा किया है।

पहला सिपहसालार—एक खुदाका क्या मतलब ?

वही सिपाही—इनके यहाँ तो कई खुदा होते हैं न सरकार !

पहला सिपहसालार—अच्छा, अच्छा, समझा। हाँ, तो, उसे भैरव खुदाने पैदा किया है ?

वही सिपाही—हाँ, हुजूर, और उस खुदाकी करामात कालीने उसे ताकत दी है।

पहला सिपहसालार—खुदाकी करामात काली क्या ?

वही सिपाही— जनाबआली, इनके मज़हबमें खुदा अलहिदा होते हैं और उनकी करामातें अलहिदा।

पहला सिपहसालार—खूब ! तो उस यदुरायको भैरव खुदाने पैदा किया और उस खुदाकी करामात कालीने उसे ताक़त दी, क्यों ?

वही सिपाही—हाँ, हुजूर यही सुना जाता है।

दूसरा सिपहसालार—यह सब वाहियात बातें हैं।

दूसरा सिपाही—लेकिन, सरकार, उसने त्रिपुरीके राजाको शिकस्त दी और हम लोग भी अब तक फ़तह हासिल नहीं कर सके।

दूसरा सिपहसालार—इसके दूसरे सबब हैं; न कि यह कि यदुरायको भैरव खुदाने पैदा किया और उसकी करामात कालीने उसे ताक़त दी।

[नेपथ्यमें ‘ महाकोशलके महा-सेनापतिकी जय ’ ‘ महाकोशलकी जय ’ शब्द होते हैं ।]

तीसरा सिपाही—यह देखिए, हुजूर। गोंड़ लोग शोर मचा रहे हैं।

चौथा सिपाही—इसी तरह शोर मचाकर ये जंग करते हैं।

पहला सिपाही—और सुना है सरकार, कि जब ये इस तरह शोर मचाते हैं तब इनके यदुरायमें जो खुदा भैरव और उसकी करामात काली रहती है उसकी ताक़त इन शोर मचानेवालोंको भी मिल जाती है।

पहला सिपहसालार—तो वह खुदा भैरव और उसकी करामात काली यदुरायके जिस्मके भीतर रहते भी हैं?

दूसरा सिपहसालार—अरे तुम लोग इन वाहियात, और बे-सिर-पैरकी बातोंको सुन सुनकर दीवाने तो नहीं हो गये हो? जिस तरह हम लोग 'दीन दीन' का नारा लगाते हैं उसी तरह यह 'महाकोशलकी जय' का नारा लगाते हैं। महाकोशल उनके मुल्कका नाम है।

पहला सिपहसालार—फिर उनके खुदा और करामातें तो वही हैं न जिनमेंसे न जाने कितनोंको हम तोड़ फोड़ चुके हैं!

[एक सिपाहीका प्रवेश]

पहला सिपहसालार—कहो, जंगका क्या हाल है?

आगन्तुक—सब ठीक है, हुजूर।

दूसरा सिपहसालार—कैसा, ज़रा सब बातें बताओ!

आगन्तुक—सिर्फ़ सिपहसालार दिलेरखाँ मारा गया।

दूसरा सिपहसालार—और?

आगन्तुक—और सब दुरुस्त है। पूरबकी तरफ़का लश्कर ज़रूर कुछ पीछे हटा है।

पहला सिपहसालार—और पछाँहका ?

आगन्तुक—वह तो बहुत पीछे हट गया।

दूसरा सिपहसालार—और शुमाली लश्कर ?

आगन्तुक—वहाँ तो अब अपना लश्कर नहीं है।

दूसरा सिपहसालार—कहाँ गया ?

आगन्तुक—भाग गया, हुजूर, कहाँतक दक्खिनके लश्करके मुआफ़िक जान देता !

पहला सिपहसालार—तो दक्खिनके लश्करका क्या हुआ ?

आगन्तुक—सब मारा गया, सरकार।

दूसरा सिपहसालार—फिर सब कुछ ठीक क्या है ? ख़ाक ठीक है ?

पहला सिपहसालार—चलिए, हम लोगोंको खुद चलकर देखना चाहिए।

दूसरा सिपहसालार—चलिये।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—युद्धक्षेत्र

समय—सन्ध्या

[दृश्य प्रायः वैसा ही है जैसा तीसरे अंकका अंतिम दृश्य था। अकेला नागदेव अनेक शत्रु-सैनिकोंसे घिरा हुआ युद्ध कर रहा है। बहुत देर तक युद्ध होता है। अनेक सैनिकोंको नागदेव मारता है और अंतमें बुरी तरह आहत होकर गिरता है। अनेक गोंड़ और क्षत्रिय सैनिकोंका प्रवेश। नागदेवको गिरा देख कई भागनेको उद्यत होते हैं।]

यदुराय—(सामने देखते हुए सैनिकोंसे) देखो, वे आ रहे हैं, सामनेसे ही आ रहे हैं। मारो, चलाओ बाण। एक भी न बचने पाये। नागदेवके हत्यारोंमेंसे एक भी शेष न रहे।

[यदुराय और सैनिक बाण चलाते हैं। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान...त्रिपुरीका राज-पथ

समय—संध्या

[दूरपर बौद्ध शिल्पकलाके ऊँचे ऊँचे भवन, मन्दिर आदि दिखायी देते हैं। चौड़ा मार्ग है। चार पुरवासियोंका प्रवेश। सभी उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं। त्रिपुण्ड लगाये और आभूषण भी पहने हैं।]

एक—देखा, बन्धु, अकुलीन गोंड़ोंने क्या कर दिखाया?

दूसरा—हाँ, बन्धु, उन्होंने वह किया जिसे इस देशका कोई क्षत्रिय भी न कर सका था।

तीसरा—क्षत्रियोंकी भी तो सहायता थी?

पहला—कौन कहता है नहीं, सारे देशकी सहायता थी, पर नेतृत्व तो गोंड़ोंका ही था।

चौथा—विदेशियोंसे इस प्रकार किसीने अपने देशकी रक्षा न की।

पहला—जिसमें नागदेवके वधके पश्चात् तो यदुरायमें ऐसी शक्ति आयी जो कभी देखी तो क्या पढ़ी और सुनी भी न थी।

दूसरा—शूरोंका दुख भी अद्भुत होता है। वे कायरोंके समान शोकमें भी अकर्मण्य होकर बैठे बैठे रोते नहीं।

तीसरा—अब मुसलमानोंके इधर आनेकी सम्भावना नहीं है।

पहला—क्यों ?

तीसरा—तुमने नहीं सुना ? गोरमें शहाबुद्दीनका देहावसान हो गया है और कुतुबुद्दीन स्वयं दिल्लीके सिंहासनपर बैठनेका प्रयत्न कर रहा है।

पहला—अच्छा ?

तीसरा—वहाँकी गड़बड़के कारण उसे इस ओर ध्यान देनेका अवकाश ही न मिलेगा।

चौथा—यदि वे आवें तो हम लोग उनके लिए तैयार भी हैं।

तीनों—हाँ, हाँ, सो तो है ही, पर....पर...

[कुछ देरतक चारों चुप रहते है]

पहला—युद्धमें रेवा सुन्दरी और विन्ध्यबालाने भी अद्भुत् कार्य किया।

दूसरा—इसमें क्या सन्देह है। यदि उन्होंने इतना कार्य न किया होता तो इतने भट और इतना धन मिलना असम्भव था।

तीसरा—फिर उन्होंने स्वयं युद्ध किया।

दूसरा—और आहतोंकी कितनी सेवा की ?

चौथा—निस्सन्देह, महाकोशलमें ये दो देवियाँ उत्पन्न हुई हैं।

दूसरा—जिसमें विन्ध्यबाला तो साक्षात् देवी है। देशोद्धारके सम्मुख अपने वैधव्यके दुःखकी ओर भी न देखा।

तीसरा—और हम गुरुदेवको तो भूले ही जा रहे हैं।

चौथा—गुरुदेव क्यों ? उन्हें तो राजद्रोही कहा जाता था।

पहला—अरे, उन्होंने तो यथार्थमें देशकी प्रतिष्ठा रक्खी है।

[कुछ देर तक चारों चुप रहते हैं।]

दूसरा—अब देखना है—पण्डितों, सामन्तों, और श्रेष्ठियोंका क्या होता है।

एक गोंड़ सैनिक—(साथियोंको भागनेपर उद्यत देख कड़ककर) सेनापतिका पतन देख भाग रहे हो ? सावधान, हम सेनापतिके लिए नहीं, देशके लिए युद्ध कर रहे हैं। स्मरण नहीं है, हमने वीरवर यदुरायके अभिषेकके समय क्या प्रतिज्ञा की थी ?

[सब लौट आते हैं और ' महाकोशलकी जय ' कहकर मुसलमानोंपर टूट पड़ते हैं। बहुत देर तक युद्ध होता है। मुसलमान सैनिक भागते और ये उनका पीछा करते हैं। अनेक सैनिकोंके संग यदुरायका प्रवेश। वह गिरे हुए नागदेवको देख दौड़कर उसके निकट जाता है और उसका सिर गोदमें ले ढालसे उसके मुँहपर हवा करते हुए बोलता है।]

यदुराय—प्यारे मित्र नागदेव, बोलो, बोलो, बन्धु, जिसे तुम अपना प्यारा भाई, अपना सखा, अपना सर्वस्व कहते थे उससे भी न बोलोगे ? आह ! तुम्हें क्या हो गया ! क्या हो गया, मित्र ?

नागदेव—(आँखें खोल धीरेसे) कौन, यदुराय ! प्यारे मित्र यदुराय, (यदुरायके गलेमें हाथ डालकर) मेरे सर्वस्व, मुझे बड़ा हर्ष है कि मरते समय तुम भी मुझे मिल गये, बन्धु।

यदुराय—(आँसू गिराते हुए) क्या कह रहे हो, यह तुम क्या कह रहे हो, मित्र ? क्या यह यदुराय पृथ्वीपर विना नागदेवके जीवित रह सकता है ?

नागदेव—वीरोंके मुखसे ऐसे वाक्य ! ये वाक्य तुम्हें शोभा नहीं देते, सखा। मेरे सदृश मृत्यु कितने बड़भागियोंकी होती है ? मुझे देशोद्धारमें अपने प्राणोंकी बलि चढ़ानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। संसारमें किस किसको यह सौभाग्य प्राप्त होता है ? तुम मेरे लिए दुःखी हो रहे हो ! जिसके लिए सुखी होना चाहिए उसके लिए दुखी हो रहे हो ! (कुछ ठहरकर) बन्धु, बहुत प्यास लगी है, कहीं जल मिलेगा ?

[एक सैनिक दौड़कर जाता है। पानी लेकर आता है। यदुराय अपने हाथसे थोड़ा थोड़ा जल नागदेवको पिलाता है।]

नागदेव—(कुछ क्षण पश्चात् अत्यन्त क्षीण स्वरमें) अच्छा प्यारे सखा, अब....चलनेमें विशेष विलम्ब नहीं;....तुम्हारे दर्शन भी हो.... तुम्हारे हाथोंसे पानी भी....देखो, दुखमें अपना धर्म, अपना कर्तव्य ....विदेशियोंको देशसे निकाल....तब विश्राम....मण्डलाके राज्यके अब तुम्हीं अधिपति....प्यारे बन्धु,....जय शिव।

[नागदेवकी मृत्यु। यदुराय रो पड़ता है।]

यदुराय—(नागदेवके शवको देखते हुए कुछ देर पश्चात् लम्बी साँस ले रुँधे कण्ठसे) गोंड़ोंके सर्वश्रेष्ठ पुरुष, महाकोशलके उच्चतम् हृदय, चल दिये। उस प्रकार गये जिस प्रकारका जाना बहुत कम बड़भागियोंका होता है। तुम तो चले गये, बन्धु, इस मन्दभागीको छोड़ गये; आजन्म तुम्हारी एक एक बात, एक एक कृति, एक एक उपकार स्मरण करनेके लिए छोड़ गये। ऐसी मित्रता संसारमें किसमें होती है? अपनेको, अपने राज्यको आपत्तिमें डाल मुझे आश्रय दिया। राजा होकर मुझ दरिद्रीकी प्रसन्नता, मुझ निर्धनके भावोंका ध्यान रखते थे और चौसठ घड़ी मेरे मुखकी ओर देखते थे। अन्तमें अपना राज्य भी मुझे दे गये! हाय! हाय! यह संसार मेरे लिए शून्य हो गया। कौन जगत्‌में मेरा इतना ध्यान रक्खेगा? कौन विश्वमें मुझसे इतना प्रेम करेगा? (कुछ ठहरकर क्रोधसे) विदेशियोंने इस देशके रत्नकी हत्या की है। एकको अनेकने मिलकर मारा है। (दाँत पीसकर) इस सर्वश्रेष्ठ गोंड़की, महाकोशलके सर्वोच्च प्रेमीकी, विदेशियोंने हत्या की है। देखूँ, अब ये महाकोशलकी सीमामें कितने दिन रह सकते हैं?

[नेपथ्यमें 'दीन दीन' शब्द होता है। यदुराय खड़ा हो धनुष्य बाण सम्हालता है।]

उसके उत्तम होनेमें सन्देह ही क्या हो सकता है। अच्छा, चलो तो फिर राज-भवन ही चलें।

तीनों—चलो, वहाँ कदाचित् अन्य कुछ बातोंका पता चले।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—रेवासुन्दरीके कक्ष की दालन

समय—प्रातःकाल

[रेवासुन्दरी एक आसंदीपर बैठी हुई गा रही है और कई आसंदियाँ इधर उधर रखी हैं। आज वह अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये हैं। सिरपर विवाहका मौर बँधा है।]

गान

ऊषाके अरुण कपोलोंकी
लालीमें डूबा मधु प्रभात,
नलिनीके कानोंमें गूँजी
अलिगणकी मीठी सुखद बात।
सुमनोंके दल खिल खिल उठते,
सखि! किसके अभिनन्दनमें?
मनका मकरन्द ढुला पड़ता
किनके चरणोंके वन्दनमें?
जीवनके सपने दीप सजाते
सुख-सुहागकी थालीमें;
हृदय-कमलके दल डूबे सखि!
किस कुंकुमकी लालीमें?

[विन्ध्यबालाका प्रवेश । उसका वही वेश है जो वैधव्यके पश्चात् था। कटिसे वही खड्ग लटक रहा है।]

रेवा सुन्दरी—(खड़ी होकर) सखि, तुम मानवी नहीं, देवी हो।

विन्ध्यबाला—(एक आसंदीपर बैठते हुए) और यही यदि मैं तुम्हारे लिए कहूँ तो ?

रेवा सुन्दरी—(दूसरी आसंदीपर बैठते हुए) वह अतिशयोक्ति होगी।

विन्ध्यबाला—क्यों ?

रेवा सुन्दरी—एक तो इसलिए कि मैं ऐसी हूँ नहीं, दूसरे जैसी भी हूँ तुम्हारी बनायी हुई हूँ।

विन्ध्यबाला—मनुष्य किसीको कुछ भी बनानेकी शक्ति नहीं रखता, बनानेवाले भगवान् हैं। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब यह कहो कि तुम जो चाहतीं थीं सब हो गया ?

रेवा सुन्दरी—(आँखोंमें आँसू भरकर) मेरा तो सब हो गया, सखि, पर तुम्हारा सब खो गया। (लम्बी साँस लेती है।)

[विन्ध्यबालाकी आँखोंमें भी आँसू भर आते हैं, पर वह उन्हें पीनेका प्रयत्न करते हुए कुछ देर चुप रह इधर उधर टहलने लगती है।]

विन्ध्यबाला—(स्वस्थ होते हुए) देखो, राजकुमारी, इसका दुःख न करो। जब मैं तुम्हें मेरे लिए दुखी देखती हूँ तब मेरा दुःख और बढ़ जाता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, देखो, मैं तुमसे कुछ बातें और कह देना चाहती हूँ।

रेवा सुन्दरी—कह देना चाहती हो, इसका अर्थ ? सदा कहती ही रहोगी।

विन्ध्यबाला—अच्छा, सुनो तो, देशका उद्धार हो गया। महाकोशल अब परतंत्र नहीं है। विदेशी इस देशकी सीमाके बाहर चले गये। तुम्हारे पिताके प्राण भी बच गये। आज तुम्हारा विवाह भी,

चौथा—कुछ नहीं, क्या होगा ? यदुराय और गुरुदेव महान् हृदयके मनुष्य हैं। उनके मनमें इस प्रकारकी नीच प्रतीकारकी भावनाएँ थोड़े ही हैं। तुमने नहीं सुना, कल ही राज्यमें विज्ञप्तिकी डोंड़ी पिटी है!

दूसरा—कैसी डोंड़ी ?

चौथा—कि इनमेंसे किसीको दण्ड न मिलेगा।

दूसरा—अच्छा ! मैंने नहीं सुना !

पहला और तीसरा—हाँ हाँ, हम लोगोंने सुना है।

दूसरा—तब ये लोग भी, देखना, यदुराय और गुरुदेवके साथ हो जाएँगे।

चौथा—अरे, यह तो होता ही है। सफलके साथ सभी हो जाते हैं।

दूसरा—सच बात है। संसारमें कार्यको महत्त्व है और कार्य ही कुलीनताकी कसौटी है।

तीनों—हाँ हाँ, सो तो है ही।

[कुछ देर तक चारों चुप रहते हैं।]

पहला—तो अब अक्षय तृतीयाको यदुरायका रेवा सुन्दरीके साथ विवाह हो जायगा और उसी दिन उनका राज्याभिषेक ?

दूसरा—उसी अक्षय तृतीयाको जिस दिन चण्डपीडका रेवा सुन्दरीसे विवाह और उसका युवराज पदपर राज्याभिषेक होता।

तीसरा—फिर ये दोनों कार्य स्वयं परमभट्टारक विजयसिंह देव अपने हाथसे करेंगे।

दूसरा—वे ही विजयसिंह देव जो चण्डपीडका करनेवाले थे।

चौथा—कैसा अद्भुत् संसार है !

तीसरा—परन्तु ये दोनों कार्य त्रिपुरीके राजप्रासादमें न होकर धुआँधारपर क्यों हो रहे हैं।

चौथा—इसका कारण किसीको भी ज्ञात नहीं।

पहला—मैंने कई सज्जनोंसे पूछा पर कोई कुछ नहीं बताता।

दूसरा—सत्य ही आश्चर्यकी बात है।

तीसरा—हाँ, इतना अवश्य ज्ञात हुआ है कि परमभट्टारककी इच्छासे ये कार्य धुआँधारपर हो रहे हैं।

चौथा—सो तो मैं भी जानता हूँ, पर क्यों हो रहे हैं, यह नहीं जानता।

तीनों—कोई भी नहीं जानता।

[कुछ देर चारों चुप रहते हैं]

तीसरा—महामंत्री अब भी सुरभी पाठक ही रहेंगे, क्यों?

चौथा—अवश्य। उनसे अच्छा मंत्री मिल भी कौन सकता है?

पहला—इस अवस्थामें भी उनमें कितनी शक्ति है?

दूसरा—और कैसी त्यागपूर्ण रहन सहन है! फिर उसी छोटीसी कुटीमें वे रहेंगे और वही मोटा वस्त्र और मोटा भोजन उपयोगमें लायेंगे।

तीसरा—सारे राज्यका वैभव अधिकारमें होते हुए भी इस प्रकार जीवन-यापन ही तो ब्राह्मणोंका आदर्श है।

तीनों—हाँ हाँ, सो तो है ही।

[कुछ देर चारों चुप रहते हैं]

पहला—देखना है, यह नवीन गोंड़ राज्य प्रजाके लिए कैसा होता है।

दूसरा—जो राज्य ऐसे वीरों और त्यागियोंके हाथोंमें होगा,

सुरभी पाठक—चलो, राजकुमारी, आजकी बारात एक नवीन पद्धतिसे निकलेगी। विवाहके पूर्व ही वर-वधू सम्मिलित उस बारातमें चलेंगे! तुम भी चलो, विन्ध्यबाला!

विन्ध्यबाला—(संकोच करती हुई) मैं भी चलूँ!

सुरभी पाठक—क्यों? अवश्य चलो। उस विदुषी और ज्ञानकी प्रतिमाको शोक क्या यहाँ तक प्रभावित करेगा कि आजके युगान्तर उपस्थित करनेवाले अवसरपर महाकोशलकी वह सच्ची देवी वहाँ उपस्थित न रहेगी?

विन्ध्यबाला—नहीं, इसलिए नहीं, गुरुदेव, परन्तु मुझ विधवाका इस शुभ अवसरपर उपस्थित होना अशुभ न....

सुरभी पाठक—(बीच हीमें) आह! क्या कहती हो, क्या कहती हो? विन्ध्यबाला, तुम्हारा प्रत्येक अवसरपर उपस्थित रहना प्रत्येकके लिए महाशुभ और महा-मंगलप्रद है। फिर तुम्हारा ही क्यों, जिन्हें वैधव्य प्राप्त हो गया है और जो एक पवित्र व्रतके कारण अपना सारा जीवन महान् संयम एवं अद्भुत् स्वार्थत्यागसे व्यतीत कर समस्त संसारको संयम तथा त्यागका जीता-जागता उदाहरण बता रही हैं, अपने तपसे समाजका शुभ और मंगल कर रही हैं, उनका शुभ तथा मंगलकारी अवसरोंपर उपस्थित होना अशुभ और अमंगल? कृतघ्नताकी सीमा होती है! विधवाओंके प्रति समाजका यह निन्दनीय व्यवहार, उनका यह नीच तिरस्कार, ओह, असहनीय है, विन्ध्यबाला, सर्वथा असहनीय है! समाजके हृदयसे इन कलुषित भावोंका मूलोच्छेद करना होगा। चलो, अवश्य चलो,—तुम्हें चलना ही होगा।

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) इस समस्त सुखमें इनका यह दुःख और नागदेवका वियोग तो सहा नहीं जाता, गुरुदेव। आह, मित्रके

संग जीवनके दुःख भी सुखसे सहन किये जा सकते हैं, परन्तु, मित्रके बिना जीवनके सुख भी भार-स्वरूप हो जाते हैं। संसारमें सबसे बड़ा दुःख कदाचित् मित्ररहित होना है।

सुरभी पाठक—परन्तु पश्चात्ताप निरर्थक है, वीरवर, पश्चात्तापसे मनुष्यको पीछेकी ओर देखना पड़ता है। सुख या दुःख किसी भी परिस्थितिमें मनुष्यको पीछे न देख सामनेकी ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए।

[परदा गिरता है]

छठा दृश्य

स्थान—एक जंगली मार्ग **समय**—सन्ध्या

[वृक्षोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी देता। कुछ गोंड़ोंका एक ओरसे तथा एकका दूसरी ओरसे प्रवेश]

एक गोंड़—जुलूस धुआँधारपर पहुँच गया ?

दूसरी ओरसे आया हुआ गोंड़—जुलूस पहुँच गया! अरे विवाह भी हो गया! अब तो राजगद्दीकी तैयारी हो रही है।

पहला—फिर तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?

दूसरा—कुछ साथी रह गये हैं, उन्हें लेने; अभी आते हैं। (प्रस्थान)

पहला—चलो भाई, हम भी चलें पर अपना गाना गाते जाओ।

[सब वही गान गाते हैं जो दूसरे अंकके सातवें दृश्यमें हथियार बनानेवाले गोंड़ गा रहे थे।]

वीरों, गाओ गौरव-गान।
तलवारोंकी झंकारोंसे,
वीरोंकी रण-हुंकारोंसे,
बहरा कर दो कुलाभिमान। वीरो०

जिनके साथ तुम चाहती थीं, हो जायगा और वे महाकोशलके सम्राट् तथा तुम पट्टमहादेवी हो जाओगी। तुम्हें स्मरण है भेद भावके नाशको अपने जीवनका ध्येय बनानेके निश्चयका।

रेवा सुन्दरी—जीवनमें क्या मैं कभी यह भी भूल सकती हूँ ?

विन्ध्यबाला—ठीक। तो अब उस ध्येयको कार्यरूपमें परिणत करनेका तुम्हें पूरा पूरा अवसर प्राप्त होगा।

रेवा सुन्दरी—अवश्य ही प्राप्त होगा।

विन्ध्यबाला—परन्तु संसारमें प्राय: यह होता है कि सत्ता और सुख मिलनेके पूर्व मनुष्य बहुतसे बड़े बड़े शुभ संकल्प किया करता है, पर जहाँ सत्ता प्राप्त हुई और सुख मिला कि सब संकल्पोंको विस्मृत कर उस सुखमें लिप्त हो जाता है और उस सत्ताका उपयोग अपने सुखकी पूर्तिके लिए करने लगता है।

रेवा सुन्दरी—तुम समझती हो, मैं भी ऐसी ही हो जाऊँगी ?

विन्ध्यबाला—यह मैं नहीं कहती। मैं जानती हूँ कि भगवानने तुम्हारा हृदय दूसरे प्रकारका बनाया है, पर फिर भी मैं तुम्हें सावधान कर देना चाहती हूँ।

रेवा सुन्दरी—सावधान तो तुम्हें सदा ही करना पड़ेगा।

विन्ध्यबाला—यह भी मैं जानती हूँ कि तुम्हारे पति महामंत्रीजीकी सम्मतिसे राज-कार्य बड़ी उत्तमतासे चलायेंगे, परन्तु जो राज्य केवल पुरुषोंके हाथमें रहता और केवल नियमोंके अनुसार ही चलता है, उसमें हृदय, विशेषकर नारी-हृदयकी कोमलतासे जो एक प्रकारके कार्य हो सकते हैं, उनका अभाव रह जाता है।

रेवा सुन्दरी—यह तो सत्य है।

विन्ध्यबाला—पट्टमहादेवीके पदसे अपने स्वाभाविक कोमल हृदय-

द्वारा जब तुम भेद भावसे रहित हो प्रजाकी सेवा करोगी तब तुम्हारे राज्यमें वह अभाव भी न रह जायगा।

रेवा सुन्दरी—और तुम सदा मार्ग बताती ही रहोगी, सखि!

विन्ध्यबाला—अब उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी, राजकुमारी मेरा इस संसारका कार्य पूरा हो गया।

रेवा सुन्दरी—(घबराकर) इसका क्या अर्थ ?

विन्ध्यबाला—यह आज तुम्हारे विवाहके पश्चात् बताऊँगी।

रेवा सुन्दरी—(कुछ सोचते हुए) और, सखि, इस खड्गको तुम सदा अपने पास क्यों रखती हो ?

विन्ध्यबाला—यह मेरा नहीं, मेरे प्राणेश्वरका है।

रेवा सुन्दरी—इससे क्या ? विदेशियोंके संग युद्धमें तुमने इसका उपयोग कर स्वर्गमें इसका श्रेय उन्हें प्राप्त करा दिया। अब इसका क्या प्रयोजन है ?

विन्ध्यबाला—अभी इसका एक उपयोग और शेष है।

रेवा सुन्दरी—वह क्या ?

विन्ध्यबाला—वह भी तुम्हें विवाहके पश्चात् बताऊँगी।

रेवा सुन्दरी—(और भी घबराकर) तुम्हारी बातोंसे तो मुझे बड़ा भय लगता लगता है, विन्ध्यबाला!

विन्ध्यबाला—जो वीरबाला युद्ध-क्षेत्रमें भयंकर युद्ध कर आयी है उसे एक स्त्रीकी बातोंसे भय लगता है, यह क्या कहती हो, राजकुमारी ?

[सुरभी पाठक और यदुरायका प्रवेश। यदुराय भी आज कौशेय वस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्जित है। उसके सिरपर भी मौर बँधा है। यदुरायको देख रेवा सुन्दरी खड़ी होकर लज्जासे सिकुड़ एक ओर हो जाती है। विन्ध्यबाला भी खड़ी हो जाती है।]

कुछ व्यक्ति—वीर-शिरोमणि यदुरायकी जय।

कुछ व्यक्ति—महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणकी जय!

कुछ व्यक्ति—गुरुदेव सुरभी पाठककी जय!

कुछ व्यक्ति—परमभट्टारक विजयसिंह देवकी जय!

विजयसिंह देव—जिन्हें कुछ समय पूर्व जिस धर्मके अनुसार जिस राज्यमें प्राणदण्डकी व्यवस्था दी गयी थी, उसी धर्मके अनुसार उसी राज्यमें उन्हींका यह उत्कर्ष, इस बातको सिद्ध कर देता है कि संसारमें कर्म ही मुख्य है और कुलीनता कर्मपर निर्भर रहती है।

जनता—अवश्य, अवश्य।

विजयसिंह देव—जिसने देशको विदेशियोंसे स्वतंत्र किया है, जिसने आज वह कर्म करके बताया है जो बड़े बड़े कुलीन भी न कर सके थे, वही इस राज्यका सच्चा अधिकारी है और आप सबकी सम्मतिसे उसीको मैं महाकोशलका राज तिलक कर यह राज-मुकुट, राज-दण्ड तथा समस्त राज-चिह्न अर्पण करता हूँ।

जनता—धन्य है, धन्य है।

विजयसिंह देव—आजसे यह नवीन 'राजगोंड़-कुल' महाकोशल-पर राज्य करेगा और चूँकि अपने जीवनके इस सर्व-श्रेष्ठकार्यको आज मैं अपने हाथों सम्पादित कर रहा हूँ, इसलिए, जैसा मैंने अभी कहा है, आजके दिवसको मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ दिवस मानता हूँ।

जनता—परमभट्टारक विजयसिंह देवकी जय!

[विजयसिंह देव सिंहासन परसे उठ खड़ा होता है और यदुरायके पास जा उसे हाथ पकड़कर उठा सिंहासनपर बैठाता है। महाधर्माध्यक्ष अपनी आसंदीसे उठकर जाता है। वह एक वृद्ध ब्राह्मण है, श्वेत लम्बी दाढ़ी और शिखा है। उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए है। निराभरण

है। उसीके साथ उसी वेशमें एक पण्डित सोनेका थाल लेकर आता है जिसमें सोनेका एक कलश रक्खा है। उसमें जल और कुश है। थालीमें कुंकुम, अक्षत इत्यादि रक्खे हैं। धर्माध्यक्ष सिंहासनके पास जा, यदुराय-को कुंकुमसे तिलक कर, अक्षत लगाता है। विजयसिंह देव अपना राज-मुकुट यदुरायके मस्तकपर धारण करा हाथमें राज-दण्ड देता है। महाधर्माध्यक्ष कलश उठा कुशसे यदुरायपर जल छिड़कते हुए वेदोक्त-मंत्र स्वरसहित बोलता है—]

महाधर्माध्यक्ष—याभिरद्भिरिन्द्रमभ्यसिञ्चत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुं ताभिरद्भि सिञ्चामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह।

[पंच महा-वाद्य बजते हैं।]

महा-प्रतिहार—(शंख बजाकर) जय, परम-माहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधिपति महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् श्री यदुराय देवकी जय !

[महाप्रतिहार फिर शंख बजाता है और चारों ओर जयघोष होते हैं]

विजयसिंह देव—(खड़े खड़े) अब आज एक कार्य शेष है, कलचुरि वंशके इस पवित्र सिंहासनपर बैठे बैठे मैंने जो महाकोशल देशको माण्डलिक राज्य बनानेका पाप किया था उसका मुझे प्रायश्चित करना है। यही कारण है कि रेवासुन्दरीका शुभ विवाह और यदुरायका राज्याभिषेक त्रिपुरीके, राज-प्रासादमें न कर धुआँधारपर किया गया है। कपिशाके महाराजा जयपालने जीवित ही अग्नि समाधि ली थी, महोबाके राजा परमाल देवने जीवित ही जल-समाधि ली थी, और ये ही दो नरेश नहीं, पर कलचुरि वंशके परमप्रतापी सम्राट् पूज्यपाद गांगेय देव भी जल-समाधि ले चुके हैं। आर्योंमें यह कोई नवीन पद्धति नहीं है। अतः "महाजनो येन गतः स पन्थः" के अनुसार मैं भी उसी पथका अनुसरण करूँगा। महाकोशलके इस सर्वश्रेष्ठ तीर्थपर, इस पुण्यतम नर्मदाके जलप्रपातमें मैं भी आज जीवित

घिरें घटाएँ तीक्ष्ण शरोंकी,
वर्षा होवे मुण्डकरोंकी,
उनके ही शोणितमें डूबे
उनके ऊँचे कुलकी शान । वीरो०
नहीं शौर्य कुल धनका वासी,
विजय वधू वीरोंकी दासी,
प्रबल प्रहारोंसे करवा दो
आज उन्हें इसका ही भान । वीरो०

[सबका प्रस्थान । परदा उठता है ।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—धुँआँधार

समय—सन्ध्या

[सामनेको दूरपर जल-प्रपात है । उसके आगे सामनेकी ओर सुन्दर मण्डप बना हुआ है । काष्ठके खुदावदार स्तम्भोंपर, जिनपर सुवर्णका काम है, मण्डपकी केशरी रंगके कपड़ेकी छत तनी है । उसके चारों ओर पल्लवों और पुष्पोंकी बन्दन-वार बाँधी गयी है । चारों कोनोंपर कदली स्तम्भ और उनके निकट सुवर्णके मंगल-कलश रक्खे हैं । सोनेकी दीवटोंपर रत्नजटित दीपक जल रहे हैं और धूप-दानियोंमें धूप । मण्डपके बीचमें सुवर्णका रत्नजटित-सिंहासन रक्खा है और उसके सामने अर्ध-चंद्राकार पंक्तियोंमें रत्नजटित आसंदियाँ रक्खी हैं । सिंहासनपर विजयसिंह देव बैठा है । उसकी वेश-भूषा सदाके समान है; अन्तर इतना ही है कि उसके मस्तकपर आज राज-मुकुट और हाथमें राज-दण्ड भी है । छत्रवाहिका उसके सिरपर श्वेत-छत्र लगाये हैं और दोनों चामर-वाहिकाएँ चामर तथा दोनों व्यजन-वाहिकाएँ व्यजन डुला रही हैं । आसंदियोंमेंसे बीचकी दो आसंदियोंपर यदुराय और सुरभी पाठक तथा शेषपर सामंत और कुलपुत्र बैठे हैं । सबके मुख सिंहासनकी

ओर हैं और वेश-भूषा सदाके समान है। एक ओर स्त्रियाँ आसंदियोंपर बैठी हैं। उन्हींमें रेवा सुन्दरी और विन्ध्यबाला हैं। महाप्रतिहार तथा अनेक प्रतिहार यथास्थान खड़े हुए हैं। प्रतिहारोंकी वेश-भूषा महाप्रतिहारसे मिलती है, परन्तु उनके हाथोंमें छड़ी और शङ्ख नहीं हैं। मण्डपके बाहर चारों ओर बहुतसे सर्वसाधारण व्यक्ति भी खड़े हुए हैं। एक ओर पंच महा-वाद्यके वादक बैठे हैं। सामन्तो और जनसमुदायमें गोंड़ भी हैं।

विजयसिंह देव—महाकोशलके कुलपुत्रो, सामन्तो, श्रेष्ठियो, और अन्य उपस्थित महानुभावो और भगिनियो! आजका दिवस मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ दिवस मानता हूँ, क्यों कि आज मैं अपने जीवनमें उस कार्यको कर रहा हूँ, जिसे मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ कार्य समझता हूँ।

जनता—धन्य है! धन्य है!

विजयसिंह देव—मेरी एक मात्र कन्या रेवा सुन्दरीका शुभ विवाह अभी महाधर्म्माध्यक्षने धर्मकी रीतिसे महाकोशलके उद्धारकर्ता वीर-शिरोमणि यदुरायके संग करा दिया है। मैंने कन्या-दानका संकल्प इस महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थलपर कर दिया है। यह ऐसा कन्यादान हुआ है जैसा आजपर्यन्त महाकोशलके किसी भी कलचुरि-नरेशने कभी न किया था।

जनता—अवश्य, अवश्य।

विजयसिंह देव—जिस अकुलीन कहे जानेवाले गोंड़की महा-कोशलके सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण सुरभी पाठकने इसी स्थानपर क्षत्रिय बना यज्ञोपवीत दान किया था, आज उसे महाकोशलके पण्डित-समाजने क्षत्रिय मान लिया है और यहाँके सम्राट्ने उसे अपनी कन्या देकर क्षत्रिय माननेका सबसे बड़ा प्रमाण उपस्थित किया है।

कुछ व्यक्ति—महाकोशलके महासेनापतिकी जय।

ही जल-समाधि लूँगा। यही आजका शेष कार्य है जो अब पूर्ण होगा। (शीघ्रतासे प्रस्थान)

विन्ध्यबाला—(खड़े होकर) नहीं नहीं, आजका एक और भी कार्य शेष है। जिस स्त्रीके कारण उसके पतिका वध हुआ है उस स्त्रीको भी अपने पापका प्रायश्चित्त करना है। यह प्रायश्चित्त यद्यपि पतिके शवके संग चितारोहण करके ही होना था, परन्तु उस समय देश स्वतंत्र नहीं हुआ था। पतिने जो देशको विदेशियोंके हाथ बेचने-वालोंके संग सहयोग किया था उस पातकका प्रायश्चित्त भी उसकी अर्धांगिनीके नाते पत्नीको ही करना था। पतिके उस पापका प्रायश्चित्त वह पतिके खड्गसे ही विदेशियोंको बाहर निकालकर कर चुकी। देश स्वतंत्र हो गया है। देशमें शक्तिशाली राज्यकी भी स्थापना हो गयी है। अब एक क्षण भी उस क्षणभंगुर शरीरको रखना, जिसके द्वारा एक महा-पातक हो गया है, स्वार्थपरताके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पतिके जिस खड्गसे उसकी पत्नीने पतिके पापका प्रायश्चित्त किया है उसी खड्गसे वह अब अपने पापका भी प्रायश्चित्त करती है। (विन्ध्यबाला खड्ग अपने हृदयमें मारकर गिरती है। उसी समय सामने विजयसिंह देव जलप्रपातमें कूदता हुआ दिखता है।)

रेवासुन्दरी—(खड़े होकर) हैं हैं! यह क्या, यह क्या!

[कोलाहल होता है। कोई खड़े हो जाते हैं। कोई बैठे रहते हैं। सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं।]

यवनिका



ऐतिहासिक पदवियाँ और उनके अर्थ

परमभट्टारक, परमेश्वर=राजा ।

सान्धिविग्रहिक, महामात्य, महामंत्री=प्रधान मंत्री ।

महासेनापति, महाबलाधिकृत=प्रधान सेनापति ।

महामुद्राधिकृत=जिसके पास राजमुद्रा (मोहर) रहती थी ।

महाधर्म्माध्यक्ष=एक प्रकारका पुरोहित ।

राजस्थानीय=प्रान्तका सूबेदार, प्रान्तके मुख्य नगरमें रहनेवाला राज-प्रतिनिधि ।

भुक्तिपति=जिलेका अधिकारी ।

विषयपति=तहसीलदार ।

अक्षपटालिक=ग्रामका राजकर्मचारी (पटैल) ।

महादण्डनायक=न्यायाधीश ।

दण्डपाशिक और दण्डक=जेलके अधिकारी ।

महाप्रतिहार=राजाके पास रहनेवाला अर्दली ।

प्रतिहार=चपरासी, द्वाररक्षक, द्वारपाल ।

भट=सैनिक ।

चाट=पुलिसका चपरासी ।

अश्वपति, गजपति, नरपति राजत्रयाधिपति=कलचुरि राजाओंकी एक उपाधि । कहा जाता है कि इस उपाधिको इनके ग्रहण करनेका यह कारण था कि कान्यकुब्जके राजाओंको अश्वपति, बंगके राजाओंको गजपति और आन्ध्रके राजाओंको नरपति कहते थे और कलचुरि राजा गांगेयदेव तथा उनके पुत्र कर्णदेवने इन तीनोंको जीता था।

त्रिकलिंगाधिपति=कलचुरि राजाओंकी दूसरी उपाधि है । त्रिकलिंगको जीतनेके पश्चात् यह उपाधि कलचुरि राजाओंने ग्रहण की थी ।